काश! बेटियाँ होतीं

(कहानी संग्रह)

कल्पना रामानी

आलोक प्रकाशन

काश! बेटियाँ होतीं

(कहानी संग्रह)

कल्पना रामानी

C- 2018 कल्पना रामानी

आलोक प्रकाशन

कल्पना रामानी - संक्षिप्त परिचय

६ जून १९५१ को उज्जैन में जन्म. हाई स्कूल तक औपचारिक शिक्षा. कंप्यूटर से जुड़ने के बाद रचनात्मक सक्रियता. कहानियाँ, लघुकथाओं के अलावा गीत, गजल आदि छंद विधाओं में रुचि. लेखन की शुरुवात -सितम्बर २०११ से. रचनाएँ अनेक स्तरीय मुद्रित पत्र-पत्रिकाओं के साथ ही अंतर्जाल पर लगातार प्रकाशित होती रहती हैं. नवगीत संग्रह - "हौसलों के पंख" (२०१३-अंजुमन प्रकाशन), गीत - नवगीत- संग्रह - "खेतों ने ख़त लिखा" (२०१६-अयन प्रकाशन) एवं ग़ज़ल संग्रह - मैं 'ग़ज़ल कहती रहूँगी' (२०१६ अयन प्रकाशन) से प्रकाशित.

प्रथम नवगीत संग्रह पर नवांकुर पुरस्कार, कहानी प्रधान पत्रिका कथाबिम्ब में प्रकाशित कहानी 'कसाईखाना' पर कमलेश्वर स्मृति पुरस्कार, कहानी 'अपने-अपने हिस्से की धूप' को प्रतिलिपि कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार एवं लघुकथा 'दासता के दाग' को लघुकथा प्रतियोगिता में व्दितीय पुरस्कार प्राप्त.

वर्तमान में वेब पर प्रकाशित होने वाली पत्रिका - अभिव्यक्ति-अनुभूति (संपादक/पूर्णिमा वर्मन) के सह-संपादक पद पर कार्यरत.

अनुक्रमणिका

क्र	कहानी	पेज नं.
1	संकल्पिता	1
2	निम्मो दीदी आ गई	18
3	अपने-अपने हिस्से की धूप	29
4	काश! बेटियाँ होतीं	41
5	ग्रीन सिग्नल	54
6	उस रात का डर	65
7	आसमान भी रोता होगा	77
8	लकीर	89
9	कसाईखाना	100
10	अनोखा उपहार	108
11	जिसकी जूती उसी का सिर	117

भूमिका

प्रिय पाठकों नमस्कार

मैं अपना पहला कहानी-संग्रह ई बुक के रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत कर रही हूँ. मेरी कहानियाँ अधिकतर सामाजिक विसंगतियों पर लिखी हुई हैं, जो आपको कुछ सोचने के लिए विवश कर देंगी. हमारे आसपास समाज में जो कुछ आजकल हो रहा है, उसका ही प्रतिबिम्ब आपको इन कहानियों में दिखाई देगा. मुझे विश्वास है कि ये कहानियाँ आपको अंत तक बाँधकर रखने में सक्षम होंगी और आप आगे भी मुझे प्रोत्साहित करते रहेंगे.

कल्पना रामानी

संकल्पिता

“माँ, देखो न! जीतू ने फिर से गुलाब का फूल तोड़ लिया, आप उसे मना क्यों नहीं करतीं”

“अरे बेटी, वो भगवान को ही तो चढ़ाता है न...फिर घर में भी कितनी सुगंध बनी रहती है”!

“मगर माँ, जब चमेली और मोगरे में ढेर सारे फूल लगे हैं तो गुलाब के फूल क्यों तोड़ना...? उसमें तो फूल बहुत कम आते हैं वैसे भी मुझे तो सारे फूल पौधों पर ही लगे हुए अच्छे लगते हैं. कितने दिन तक खिले-खिले रहते हैं माँ! मगर तोड़ते ही एक दिन में ही मुरझा जाते हैं और उन्हें कूड़े में फेंक दिया जाता है. यह तो उन्हें समय से पहले ही मृत्युदंड देना ही हुआ न! भगवान तो अगरबत्ती से भी राज़ी हो जाते हैं...भला अपनी ही रचना का यह अंत देखकर कैसे प्रसन्न होंगे?”

"इतना मोह मत रखो बेटी, अब तुम कुछ ही दिनों में ससुराल चली जाओगी तो इनकी देखरेख कौन करेगा?

अब अपने घर जाकर ही बगिया सजाना..."

"अच्छा! तो यह घर अभी से मेरे लिए पराया हो गया?"

"नहीं बेटी, मगर तुम इतनी मेहनत करती हो तो सोचती हूँ, तुम्हारे जाने के बाद यह सब कौन करेगा? न जाने कैसी लड़की इस घर में बहू बनकर आए..."

ससुराल और अपने घर की कल्पना से जयति के चेहरे पर मुस्कराहट आ गई. माँ सच ही तो कहती है...विवाह में अब दिन ही कितने रह गए हैं...और वो भविष्य के सुनहरे सपनों में खो गई.

उस दिन के बाद उसने भाई को टोकना छोड़ दिया.

जयति अपने माँ-पिता और छोटे भाई के साथ पुणे शहर की एक कॉलोनी में रहती थी. उसके पिता एक सरकारी विद्यालय में अध्यापन कार्य करते थे. घर की माली हालत कमज़ोर होने से वो नौकरी लगने के बाद ही शादी करना चाहती थी. अब तो नौकरी करते हुए भी ३-४ साल हो गए. देवराज और वो एक ही कम्पनी में कार्यरत हैं और यह विवाह उनके प्रेम का परिणाम ही है. अब वो विवाह के बाद ही अपने घर को खुशबुओं से सजाएगी...सोचते सोचते उसके होठों पर स्वतः सहज मुस्कराहट उभर आई.

कुछ ही समय बाद विवाह हो गया और जयति ससुराल यानी अपने घर आ गई. देवराज का घर उसका ही तो हुआ न!...दो बेडरूम, हाल, किचन वाले फ़्लैट में सास-ससुर के अलावा कालेज में पढ़ने वाली दो ननदें थीं. छोटी बी.ए प्रथम और बड़ी अंतिम वर्ष की छात्रा थी. घर की आर्थिक स्थिति कैसी भी हो, मगरआजकल बेटियाँ दहेज रूपी दानव से निपटने के लिए शिक्षा पूर्ण होने पर नौकरी करके आत्मनिर्भर होकर ही शादी करना पसंद करती हैं और माँ-पिता का भी उन्हें पूर्ण सहयोग तथा प्रोत्साहन मिलता है.

जयति को ससुराल में सब बहुत प्यार और सम्मान के साथ रखते थे. विजातीय होने के बावजूद सास-ससुर ने बेटे की पसंद को महत्व देते हुए बिना किसी दान दहेज के विवाह की स्वीकृति इसलिए दी थी कि चलो लड़की सुन्दर, शिक्षित और कमाऊ है और बेटे को पसंद है.सास लगभग ५५ वर्ष की थी मगर स्वस्थ और चुस्त थी. उसे बेटी... बेटी... कहते न थकती और घर के सारे काम महरी की सहायता से स्वयं ही निपटाती. वो बस छोटे मोटे काम करके अपने कार्यालय चली जाती थी. ससुर जी ने हाल ही में नौकरी से ऐच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर मिले हुए पैसों से यह दो बेडरूम का फ़्लैट खरीद लिया था. अब घर खर्च की सारी ज़िम्मेदारी देवराज पर थी. उसके कमरे की बालकनी काफी बड़ी और चौड़ी थी. यह देखकर जयति ख़ुशी से फूली नहीं समाई. एक दिन अवसर देखकर उसने पति से उस परिसर को फूलों की सुगंध बिखेरते गमलों से सजाने की अनुमति माँगी. लेकिन उन्होंने गंभीर मुद्रा बनाकर कहा-

“देखो जयति, इस कार्य में व्यर्थ ही काफी खर्च हो जाएगा, एक बार सजावट तो ठीक है लेकिन देखरेख के लिए माली भी लगाना पड़ेगा...घर खर्च ही खींचतान कर चल रहा है और अभी दो बहनों के विवाह भी करने हैं.

अभी कुछ समय के लिए यह विचार छोड़ दो.”

“लेकिन देव, मैं इस कार्य के लिए किसी से पैसे नहीं लूँगी. बगिया की देखरेख की सारी जवाबदारी मेरी होगी.” जयति ने आशा भरी निगाहों से उसे निहारते हुए कहा.

“तुम अब पराई तो नहीं जयति, अपना पैसा अभी बैंक में ही रखो, समय पर काम आएगा.”

देव की तंगदिली पर जयति सोच में पड़ गई. इस काम के लिए इतना भारी खर्च तो होता नहीं, फिर क्यों अपनी कमाई का पैसा वो अपनी इच्छा से खर्च नहीं कर सकती? उसका मन एक बारगी बुझ सा गया मगर अभी वो नई थी, अतः अपनी इच्छा को फिलहाल मन में ही दफ़न कर दिया.

दो वर्ष हँसी-खुशी बीत गए. बड़ी ननद अब पढ़ाई पूरी करके प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी में लग गई थी, तभी उसके लिए एक संपन्न घर से रिश्ता आया. पहले तो उसने अपना कैरियर बनाने से पहले विवाह से इनकार कर दिया मगर फिर माँ-पिता

के दबाव और विवाह के बाद यह सब करने की छूट के आश्वासन पर अपनी स्वीकृति दे दी.

बड़ी धूमधाम से सगाई की रस्म पूरी हुई और शीघ्र ही वर पक्ष की माँग के कारण विवाह की तैयारियाँ भी शुरू हो गईं.

आज रविवार यानी छुट्टी का दिन था. सबकी दिनचर्या भी छुट्टी के दिन देर से शुरू होती है, मगर पकृति-प्रेमी जयति इस दिन जल्दी उठकर नीचे सोसायटी के ही भ्रमण पथ पर सैर के लिए निकल जाती है. सुनहरी सुबह, खिली धूप, सुगन्धित शीतल हवा, इठलाते-लहराते पेड़ पौधे, फूल-कलियाँ, भ्रमर तितलियाँ उसका मुस्कुराकर स्वागत करते हैं. घूम फिर कर जैसे ही ऊपर आई, उसे सास-ससुर और पति को बैठक में देखकर आश्चर्य हुआ. कुछ शब्द कानों में पड़े तो लगा ननद के विवाह की ही चर्चा चल रही है. सास ने उसे प्यार से चाय नाश्ता तैयार करने के लिए कहा तो वो किचन में चली गई. छुट्टी के दिन वैसे तो शाम कोअक्सर वो देव के साथ कभी मूवी देखने तो कभी लम्बी सैर पर बाहर चली जाती है तो रात्रि-भोजन भी बाहर हो जाता है और उसे थकान उतारने का समय मिल जाता है. आज भी वे बाहर तो गए मगर देव की गंभीर मुद्रा देखकर जयति परेशान सी हो रही थी. घर आते ही जयति ने कारण पूछा-

“क्या बात है देव, आज इतने गंभीर क्यों हो? कोई समस्या हो तो मुझे भी बताओ, शायद कुछ सहायता कर सकूँ.”

“जयति, तुम तो जानती ही हो कि बहन के विवाह की तैयारियाँ चल रही हैं... आज सुबह उसी सिलसिले में माँ-पिता से चर्चा हुई. बड़े घर से रिश्ता जोड़ा है तो विवाह के लिए भी खासी रकम जुटानी होगी. पिताजी ने अपना सारा पैसा यह घर खरीदने में लगा दिया. अब गृहस्थी मेरी कमाई से किसी तरह चल रही है. इस समय हमें तुमसे आर्थिक सहयोग की अपेक्षा है.”

“मगर देव, मैं क्या सहायता कर सकती हूँ भला? तुम तो जानते ही हो कि खाते की सारी जमा रकम जो विवाह के लिए जोड़ी थी, मैं हनीमून के समय तुम्हें सौंप चुकी हूँ.”

“जयति, तुम अपनी नौकरी के आधार पर बैंक से लोन ले सकती हो. अगर मैं लोन लूँगा तो किश्तें चुकाने के लिए घर के खर्चों में कटौती करनी पड़ेगी जो संभव नहीं है.”

“यह तुम क्या कह रहे हो देव, मैं नौकरी आत्म-निर्भरता के लिए कर रही हूँ, लोन लेने के बाद तो लम्बे समय तक किश्तें चुकानी पड़ेंगी...फिर जब हमारा परिवार बढ़ेगा...तो मैं नौकरी छोड़ भी सकती हूँ, अतः मैं यह रिस्क नहीं ले सकती...बहनों का विवाह उनकी नौकरी लगने के बाद भी किया जा सकता है.”

“मगर जयति, तुम्हारा भविष्य मुझसे जुड़ा हुआ है न...और मैं जब तक अपनी पारिवारिक जवाबदारियों से मुक्त नहीं हो जाता, परिवार बढ़ाने के पक्ष में नहीं हूँ. क्या तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं है?”

“विश्वास न होता तो तुमसे विवाह ही क्यों करती देव, मगर कल किसने देखा है...”

“कल की चिंता मुझपर छोड़ दो जयति प्लीज़! मैंने तुम्हारे भरोसे पर ही माँ-पिता को बेफिक्र रहने का आश्वासन दिया है.मेरे माँ-पिता ने अंतरजातीय विवाह होते हुए भी बिना दहेज अपनी सहमति दी तो तुम्हें भी सहयोग करके उनकी भावनाओं का सम्मान करना चाहिए.”

जयति समझ गई कि सुबह की बैठक में उससे रकम हथियाने के लिए भावनात्मक जाल बुना गया है, मगर वो भी आजकल की हवा का रुख खूब पहचानती थी, उसने दो टूक उत्तर दिया-

“देखो देव, तुम अपनी पूरी कमाई घर खर्च के लिए दे देते हो, इसमें मुझे कोई ऐतराज नहीं और मैं अपने निजी खर्च के अलावा घर की छोटी-मोटी आवश्यकताओं के लिए भी यथासंभव सहयोग के लिए पीछे नहीं हटूँगी मगर लाखों का लोन लेकर मैं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी नहीं मार सकती...

मुझे अपनी कमाई अपनी इच्छा से खर्च करने का पूरा अधिकार है और मैं इस अधिकार में किसी को सेंध नहीं लगाने दूँगी...विवाह से पहले तुमने ऐसी कोई शर्त भी नहीं रखी थी कि मेरी कमाई पर मेरा हक़ नहीं रहेगा. अगर मैं समझ सकती कि मुझसे दहेज इस रूप में वसूला जाएगा तो मैं हरगिज़ तुमसे विवाह नहीं करती. नाक को सीधे पकड़ो या हाथ घुमाकर, एक ही बात है. मेरे माँ-पिता में मेरे लिए दहेज जुटाने की क्षमता नहीं थी, मगर उनके ही प्रोत्साहन और सहयोग से मैं इस मुकाम तक पहुँची हूँ."

"मुझे तुमसे ऐसी उम्मीद नहीं थी जयति, अगर तुम्हारा यही फैसला है तो इस घर में तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं..." कहते हुए देव कमरे से बाहर निकल गया.

देव का जवाब सुनकर जयति जड़वत रह गई. अगर देव का प्यार और जीवन भर साथ निभाने की कसमें स्वार्थ सेतु पर ही टिकी हुई थीं तो वो भी हार नहीं मानेगी और ऐसे दहेज-लोभी को सबक सिखाकर रहेगी.यह सोचकर उसने हिम्मत से काम लेते हुए तुरंत टैक्सी के लिए फोन करके अपने गहने-कपड़े पैक किये और घर छोड़कर निकल पड़ी. सास-ससुर उसे जाते हुए देखते रहे मगर उसे रोकने का प्रयास किसी ने नहीं किया. शायद वे सारा मामला भाँप गए थे. आखिर यह सब उनकी मिली भगत का ही तो परिणाम था.

ooo ooo ooo ooo

जयति को सामान के साथ टैक्सी से अकेले उतरते देखकर माँ-पिता एक-दूसरे को सवालिया नज़रों से देखने लगे.

जयति ने अन्दर आकर उनको प्रणाम किया और सब एक साथ बैठक में आ गए. माँ-पिता के पूछने पर उसने भरे गले से सारी दास्तान कहकर सुनाई. उन्होंने उसे तुरंत सांत्वना देते हुए कहा-

"बेटी दुःख न करो, हम तुम्हारे साथ हैं. यह घर तुम्हारा भी है."

मगर जयति समझ गई थी कि बेटियों का कोई घर नहीं होता, चाहे इस बात को माँ-पिता को मजबूरी में ही कहना पड़ता होगा कि यह घर उनके लिए पराया है, क्योंकि उन्हें पति के घर जाना होता है...और पति का घर? वो भी सारे त्याग-तपस्या के बावजूद उनका नहीं हो सकता, जब चाहे उन्हें प्रताड़ित और अपमानित करके बाहर कर दिया जाता है.

इन दो वर्षों में भाई का विवाह हो चुका था. वो भाई के विवाह में सिर्फ चार दिन के लिए देवराज के साथ आई थी और उसके बाद पहली बार ही मायके आई थी. भाभी सुन्दर और नम्र व्यवहार वाली थी. जयति अपने पुराने दिनों को ढूँढती हुई घर के कोने कोने को अपनी व्यथा सुनाने लगी. आँगन में उसके पसीने से पाली-पोसी हुई बगिया का नामोनिशान तक नहीं था, जबकि पिछली बार सब कुछ यथावत था.

जयति को दुःख तो हुआ मगर उसने लापरवाही से सिर झटक दिया. जब यह घर उसका है ही नहीं तो कैसा संताप! उसका कमरा अब भाई-भाभी का था. उसे विवाह से पहले, हाल में भाई के लिए नियत स्थान रहने-सोने के लिए दे दिया गया. उसने नियति को स्वीकार करते हुए मन-ही-मन सबसे पहले किसी सोसायटी में अपना घर खरीदने का संकल्प किया. अपना घर...जहाँ सुनहरी सुबह और सुरमई शाम का एक टुकड़ा सिर्फ उसका होगा. बालकनी में बैठकर वो सुगंध बिखेरते हुए फूल, उगता-डूबता सूरज, चमकते सितारे, चाँद की चाँदनी और रात की रागिनी महसूस कर सकेगी.

अगले ही दिन जयति ने अपने कार्यालय में फोन करके अपरिहार्य कार्य होने की बात बताकर कुछ दिन की छुट्टी के साथ ही उसी कंपनी की शहर की किसी अन्य शाखा में स्थानांतरण के लिए आवेदन भेज दिया. यह सब इतना आसान नहीं था मगर काफी जद्दोजहद और औपचारिकताओं के बाद उसे अपने मौजूदा कार्यालय से कुछ दूर उसी पद पर स्थानांतरित कर दिया गया. यह स्थान उसके माँ-पिता के घर से काफी दूर होने के कारण उसने उसी इलाके की एक सोसायटी में किराये का फ़्लैट लेकर रहना शुरू कर दिया. कार्यालय जाना शुरू करते ही वो आसपास ही एक निर्माणाधीन सोसायटी में अपना फ़्लैट बुक करने के लिए बैक से लोन लेने की कवायद में जुट गई और अच्छी नौकरी के आधार पर उसका लोन शीघ्र ही स्वीकृत भी हो गया और उसने एक बेडरूम हाल किचन वाला फ़्लैट बुक करने के बाद ही चैन की साँस ली.

लगभग दो वर्षों में फ़्लैट पूरा हो गया और कुछ समय साज सज्जा में गुज़र गया. अकेली यह सब करते-करते जयति शारीरिक और मानसिक रूप से थक चुकी थी मगर संतुष्ट थी कि उसका अपने घर का एक संकल्प पूरा हो चुका है. गृह प्रवेश की तिथि निर्धारित करके इस शुभ-अवसर पर उसने अपने परिजनों और नए कार्यालय के कुछ सहकर्मियों और अधिकारियों के अलावा स्थानीय फेसबुक मित्रों को आमंत्रित करने का मन बनाया. अपना फेसबुक खाता वो विवाह के बाद ही निष्क्रिय कर चुकी थी, अतः उसे फिर से सक्रिय करके उसने अपने विशेष मित्रों की सूची बनानी शुरू की. इस प्रक्रिया में उसे अपने कालेज में साथ पढ़ने वाली प्रिय सखी विभारानी, जो उससे ६ महीने पहले ही विवाह करके पति के साथ अमेरिका चली गई थी, ऑनलाइन दिखाई दी. जयति ने तुरंत उसे मैसेज भेजा तो तत्काल उत्तर भी आ गया. हाय! हेलो! के साथ ही चैट पर बातें शुरू हो गईं.

“रानी, काफी लम्बे अरसे से हमारी बातचीत नहीं हुई, बताओ सखी, कैसी गुज़र रही है अमेरिका में...पतिदेव कैसे हैं और बाल बच्चे...?” जयति ने एक साथ प्रश्न दागते हुए पूछा.

“जयति, मेरा विनय से तलाक हो चुका है और मैं १५ दिन पहले ही भारत वापस आ गई हूँ...मुझे वहाँ की सभ्यता और संस्कृति बिल्कुल रास नहीं आई. विनय का नित्य नई औरतों के साथ खुलेआम घूमना-फिरना मुझे चैन से जीने नहीं दे रहा था. अभी

तक कोई बच्चा भी नहीं हुआ था, अतः काफी मानसिक यंत्रणा झेलने के बाद यह निर्णय लेना पड़ा. मैं इस समय पुणे में ही माँ-पिता के साथ हूँ."

"ओह! सुनकर बहुत दुःख हुआ जयति, अब क्या करने का इरादा है?"

"कुछ दिन पहले पुणे के ही एक फेसबुक मित्र ने मेरी व्यथा-कथा सुनकर मेरे साथ विवाह की इच्छा प्रकट की और साथ ही अपनी कम्पनी के एक रिक्त पद पर नियुक्ति करवाने का वादा भी किया. उसकी पत्नी अमीर घराने से थी. कुछ समय पहले राजा की सीमित आय के कारण उसे छोड़कर चली गई थी. मैंने उससे अपने और उसके परिजनों के सामने ही मिलकर बातचीत की और सबकी साझा सहमति से हमारी सगाई हो गई. १५ दिन बाद हमारी शादी भी होने वाली है. तुम तो ऐसी गुम हुई कि फिर ढूँढे नहीं मिली. फोन से भी संपर्क नहीं हो पाया."

"वो क्या है रानी कि विवाह के बाद कुछ समय निजी ज़िन्दगी जीने की इच्छा से मैंने अपना मोबाईल नंबर बदलने के अलावा फेसबुक खाता भी निष्क्रिय कर दिया था. पर अब फिर वापस आ गई हूँ अपने मित्रों के बीच..."

"तो क्या अब निजी ज़िन्दगी से ऊब गई हो?" विभारानी ने परिहास के स्वर में पूछा.

“मेरी कहानी बहुत लम्बी है रानी, सामने मिलने पर सब विस्तार से बताऊँगी. मैंने नया फ़्लैट खरीदा है और अगले सप्ताह ही गृह-प्रवेश के अवसर पर कुछ पुराने विशेष स्थानीय मित्रों को आमंत्रित करने के लिए ही मैं फेसबुक पर सक्रिय हुई हूँ. अब तुम पुणे में ही हो तो तुम्हें इस अवसर पर आवश्यक रूप से आना है साथ ही अपने राजा को भी ले आना तो उनसे भी परिचय हो जाएगा.” जयति ने गंभीर स्वर में अपनी बात कही.

“अवश्य सखी, मुझे तुम्हें फिर से पाकर इतनी प्रसन्नता हो रही है कि शब्दों में बयान नहीं कर सकती और तुम्हारी कहानी सुनने के लिए भी उत्सुक हूँ.”

जयति ने उसे अपने फ़्लैट का पता और नया मोबाइल नंबर नोट करवाया और आने का वादा लेकर विदा ली.

नियत दिन-वार पर विभारानी जयति के बताए पते पर पहुँच गई. फ़्लैट का मुख्य द्वार वंदनवार से सजा हुआ था. उसपर सुन्दर सा नामपट्ट लगा हुआ था मगर उसकी इबारत पढ़ते ही विभारानी की आँखों में अनेक प्रश्न तैरने लगे. नामपट्ट पर ऊपर पतले शब्दों में लिखा था- “यह घर मेरा है” और नीचे मोटे अक्षरों में लिखा था “संकल्पिता”. सोच में डूबी विभारानी ने घंटी का बटन दबा दिया. तुरंत द्वार खोलकर जयति उसके गले से लिपट गई और प्यार से हाथ थामकर अन्दर आमंत्रित मेहमानों के साथ बिठाया. उसने विभारानी से अकेली आने का कारण पूछा तो उसने कहा- राजा

को कुछ निजी काम है, कार्यक्रम के बाद मैं उसे फोन करूँगी तो वो मुझे लेने आ जाएगा.

हाल में ही हवन कुण्ड सजा हुआ था और पंडितजी भी आ चुके थे लेकिन पूजा के समय जब जयति अकेली बैठी तो विभारानी को आशंकाओं ने घेर लिया. वो सबके सामने कुछ पूछ भी नहीं सकती थी अतः अभी चुप रहना ही ठीक समझा. हवन-पूजन के बाद मेहमानों के लिए भोजन की व्यवस्था थी. धीरे-धीरे सभी मेहमान फिर कुछ देर में परिजन भी उसे उपहारों के साथ सौ हिदायतें और शुभकामनाएँ देते हुए विदा हुए. अब घर में केवल दोनों सखियाँ ही थीं.

एकांत पाते ही विभारानी जयति से मुखातिब हुई-

“जयति, तुम अकेली क्यों और घर के नाम-पट पर -“यह घर मेरा है-

“संकल्पिता”...??"

जयति ने विभारानी की जिज्ञासा को शांत करने के लिए अपनी सारी बीती हुई दास्तान विस्तार से कह सुनाई. सुनकर विभारानी के तो रोंगटे ही खड़े हो गए. फिर कुछ संयत होकर पूछा-

“मगर जयति, अब यह पहाड़ सी ज़िन्दगी क्या अकेले काट सकोगी?”

“अकेले क्यों रानी, क्या यह धरती मानव रहित हो गई है? मैं एक दानव के पीछे अपनी ज़िन्दगी के सुखों का उत्सर्ग नहीं करने वाली...ऐसा करना तो इस सुन्दर सृष्टि और सृष्टिकर्ता का अपमान ही होगा बहन...मगर मेरा साथी एक संवेदन शील इंसान होगा.मेरी जंग मानवों में छुपी हुई दानवी प्रवृत्ति से है.आज जब बेटियों को आत्मनिर्भर होने और दहेज के दानव से बचाने के लिए उनके माँ-पिता उसे बेटों के सामान सुविधाएँ देकर पढ़ाते-लिखाते हैं तो इसलिए नहीं कि उनकी अर्जित कमाई पर ही भावनात्मक रूप से विवश करके डाका डाला जाए...यानी वही दहेज का दानव अपना रूप बदलकर बेटियों को निगलने के लिए जबड़े खोलकर बैठा है और रानी,मैं ऐसा हरगिज़ नहीं होने दूँगी. जो पुरुष, नारी का सम्मान करना नहीं जानते, उन्हें चुन-चुनकर सजा देने के लिए मैं हर जनम में बेटी बनकर आना चाहूँगी. मेरा घर बनाने का संकल्प पूर्ण हो चुका है,अब अगला संकल्प उस धन-लोलुप नर पशु का चेहरा सार्वजनिक करने का है, इसी कारण नामपट पर “संकल्पिता” लिखवाया है. अब फुर्सत मिलते ही फेसबुक पर अपने स्टेटस में सार्वजनिक रूप से उसकी असलियत का चिट्ठा खोलकर रख दूँगी और सभी बहन-बेटियों से आह्वान करूँगी कि ऐसे दुष्टों को पहचानें और अपने-अपने कार्य-क्षेत्रों में उन्हें एक जुट होकर धिक्कृत करें ताकि फिर कभी वे किसी नारी का किसी भी रूप में शोषण अथवा अपमान करने की हिम्मत न कर सकें. देखती हूँ कि मेरे अभियान में कौन-कौन मेरा साथ देता है...”

"मैं तुम्हारी हिम्मत की दाद देती हूँ सखी.. मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ."

विभारानी ने कह तो दिया मगर सोच में डूब गई. क्या उसके साथ भी ऐसा हो सकता है? राजा ने उसे अपने ही कार्यालय में एक खाली पद पर नौकरी दिलाने का वादा किया है, कहीं यह भी उसी दहेज वसूली का हिस्सा तो नहीं? वो आज ही राजा से स्पष्ट बात करेगी ताकि आगे मनमुटाव न हो.

तभी उसके मोबाइल की घंटी बजी और राजा का नाम देखकर उसके चेहरे पर मुस्कान आ गई. राजा उसे लेने आ गया था और बिल्डिंग के बाहर उसका इंतजार कर रहा था. विभारानी ने जयति से कहा वो नीचे से राजा को लेकर आ रही है. उसके जाते ही जयति किचन में नाश्ते की व्यवस्था करने चली गई.

घंटी बजी और व्दार खुलते ही राजा का हाथ थामे हुए विभारानी ने मुस्कुराते हुए अन्दर प्रवेश किया. मगर जयति पर नज़र पड़ते ही राजा की दशा ऐसी हो गई जैसे सैकड़ों बिच्छुओं ने उसे एक साथ डस लिया हो. उसके पसीने छूटने लगे और वो विभारानी से अपना हाथ छुड़ाने का प्रयास करने लगा. विभारानी दोनों के चेहरों के बदलते हावभाव देखकर हक्की बक्की मामला समझने का प्रयास करने लगी. उसे लगा कि वे दोनों शायद पूर्व परिचित हैं. फिर भी पूरी स्थिति को समझने के लिए राजा का हाथ लगभग खींचती हुई उसके साथ चलकर सोफे पर बैठ गई. अब तक जयति कुछ सँभल चुकी थी. वो भी सामने ही बैठ गई.

विभारानी ने जयति का परिचय करवाते हुए कहा-

“राजा, यह है मेरी प्रिय सखी जयति उर्फ़ “संकल्पिता” और जयति...”

“रुको रानी, मैं इनका परिचय करवाती हूँ...ये हैं मिस्टर देवराज उर्फ़ ‘देव’, मेरे पूर्व पति और तुम्हारे मंगेतर उर्फ़ रानी के ‘राजा’...” जयति ने आग उगलती हुई नज़रों से देवराज को घूरते हुए कहा.

“सुनकर विभा को सारा ब्रह्माण्ड घूमता हुआ नज़र आने लगा...अवसाद में डूबकर बुदबुदाने लगी- हा रे लोभी पुरुष! तुम्हारी स्वार्थी सोच के आगे सारे महिला विमर्श, कहानी-कविताएँ सब व्यर्थ हैं... फिर सहसा चीख पड़ी- नहीं... जयति मंगेतर नहीं...पूर्व मंगेतर...मैं तुम्हारे साथ हूँ सखी...” कहकर विभा ने बहते हुए आँसुओं को रोकने का प्रयास करते हुए अपनी अँगुली से सगाई की अँगूठी उतारकर देवराज की अँगुली में फँसा दी.

ooo ooo ooo ooo

निम्मो दीदी आ गई...

निम्मो दीदी आ गई...

दूर से ही ताँगे की आवाज़ सुनकर एक ने दूसरे के, दूसरे ने तीसरे के कानों में उड़-उड़ कर खबर फूँकी और पलक झपकते ही बच्चों की ख़ासी वानर सेना किसान कॉलोनी के उपाध्याय-भवन के गेट के पास एकत्र हो गई।

ज्योंही ताँगा रुका सभी बच्चे कूद फाँद कर सामान उतारने लग गए और निर्मला जब तक ताँगे वाले को पैसे देती, उसका सामान अंदर भी पहुँच गया और उसे इसका उसे पता ही न चला, वो पर्स हिलाती हुई आगे बढ़ी तो गेट पर ही उसके बड़े भाई विपुल और भाभी लीना ने मुस्कुराकर स्वागत किया। बैठक में उसके साथ ही सारी वानर सेना प्रवेश कर गई।

बालों की लंबी चोटी लटकाए सूट दुपट्टे में लिपटी, सिमटकर चलने वाली निर्मला अब कटे बालों और जींस टॉप में खूब फब रही थी। अतिरिक्त आत्म विश्वास चेहरे से छलका पड़ रहा था।

वैसे तो सभी बच्चों के चेहरे, अपनी हमजोली को देखकर खिले हुए थे लेकिन उनमें मिली और निपुण के चेहरे अलग ही चमक रहे थे आखिर निम्मो दीदी उनकी बुआ जो

थीं। बाकी बच्चे पड़ोसी कृषक परिवार के थे। सभी बच्चों ने आसपास मोर्चाबंदी कर ली अब उन्हें निम्मो दीदी से मिलने वाले उपहारों का इंतज़ार था।

लगभग १० वर्ष पहले यह कॉलोनी खेतों को काटकर बसाई गई थी, अतः इसे किसान कॉलोनी नाम दिया गया था। कुछ मकान सम्पन्न कृषकों द्वारा खरीद लिए गए थे, जो खेतों के मालिक भी थे। इस नए मकान में आने के साल भर बाद ही विपुल का विवाह हो गया था और अगले तीन वर्षों में वो दो बच्चों का पिता भी बन गया। लेकिन निर्मला के विवाह से पहले ही उनके माँ-पिता की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई, और वे कन्यादान का सपना मन में सँजोए ही इस दुनिया को विदा कह गए।

निर्मला का विवाह भाई-भाभी ने समीप के ही एक शहर में किया। पति आशीष सरकारी नौकरी में था। एक ही बहन थी तो वे उसे दूर नहीं भेजना चाहते थे।

उनके पड़ोस वाला मकान एक सम्पन्न कृषक मनोहरलाल का था। वे अपनी जीप और एक ट्रेक्टर ट्राली के मालिक थे। उसका परिवार काफी बड़ा था। पत्नी सुमति देवी के अलावा तीन बेटे, बहुएँ और उनके बच्चे एक साथ ही रहते थे। भाइयों के परिवारों के बीच के प्रेम का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता था। इस परिवार की एक बड़ी खासियत यह थी कि अच्छी नौकरी, अच्छी पढ़ाई या डिग्री हासिल करने के बाद भी परिवार के लोग खेती-किसानी से पूरी तरह जुड़े हुए थे।

विपुल और लीना के संबंध उनके साथ बहुत मधुर थे। वे निर्मला को बेटी की तरह मानते थे। निर्मला मनोहरलाल को चाचाजी और सुमति देवी को चाचीजी कहकर संबोधित करती थी। उसके मायके आने पर वे अपने खेतों पर पिकनिक का कार्यक्रम अवश्य रखते थे और निर्मला भी मिली और निपुण के साथ उनके बच्चों में शामिल हो जाती थी।

निर्मला का अभी तक कोई बच्चा नहीं, इसलिए बचपना अभी तक गया नहीं था। साल में दो बार मायके आ जाती है। एक सावन में और दूसरी बार होली के दिनों में। वैसे तो सावन की रिमझिम में कहीं तफरीह करने नहीं जा सकती, फिर भी एक तो रक्षाबंधन सावन में आता है, दूसरे गाँव की कच्ची गलियों में मुहल्ले के बच्चों के साथ लोहे के सरिये गाड़ते हुए दूर तक निकल जाने, फिर पानी के गड्ढों में छप-छप करने, कागज़ की नाव के साथ पानी में भीगने और सहेलियों के साथ लँगड़ी, रस्सी-कूद आदि खेलने में उसे बहुत आनंद आता है। होली के रंगों में सराबोर होना भी उसे बहुत भाता है। यहाँ आते ही वो बच्ची बन जाती है, खाने-पीने की कोई सुध नहीं रहती। अबकी बार पति ने होली ससुराल में ही अपने साथ मनाने की बात कही तो उसने पति को ही रंगपंचमी पर गाँव आने के लिए मना लिया। मायके में कम-से कम १५ दिन वो अवश्य रहती है, शहर निकट होने से उसे आने-जाने में भी कोई परेशानी नहीं होती। कभी भैया लेने आ जाते हैं तो कभी स्वयं चली आती है।

इस बार भी वो होली से एक सप्ताह पहले आ गई थी। यहाँ का मौसम शहर की अपेक्षा काफी ठंडा था और ठंडी, नम हवाएँ भी जारी थीं। मनोहर चाचा का ज़िक्र छिड़ते ही भाभी ने बताया की अभी ७-८ दिन पहले ही असमय वर्षा और ओलों से गाँव के सभी खेतों की पकती हुई फसल का बहुत नुकसान हुआ है। सारी दास्तान सुनते ही निर्मला दुखी मन से मनोहर चाचा से मिलने उनके घर पहुँच गई। सबके चेहरे बुझे हुए तो थे लेकिन उनकी फसल का बीमा किया हुआ था तो उम्मीद की एक चमक भी उन चेहरों पर कायम थी। बातचीत में पता चला कि खेतों का हवाई सर्वे तो दूसरे दिन ही हो गया था लेकिन अब तक मुआवजा मिलने का समाचार नहीं मिला। मनोहर उसी दिन से गाँव के पटवारी के घर चक्कर लगा-लगा कर परेशान हो गया था, क्योंकि अब मुआयना करके रिपोर्ट भेजना पटवारी के ही जिम्मे था। बीमा-मुआवजा मिलने पर ही अगली फसल की बुआई या शेष फसल की कटाई शुरू हो सकेगी। मनोहर की उससे अच्छी जान-पहचान थी, वो उसकी लालची प्रवृत्ति से भी परिचित था तो पहले ही उसने मुआवजे की रकम से उसके हिस्से की बात तय कर ली थी। जल में रहकर मगरमच्छ से बैर नहीं किया जाता, यह बात वो अच्छी तरह जानता था। अचानक मनोहर ने बातचीत का रुख पलटते हुए कहा -

“लेकिन बिटिया, तुम पिकनिक के लिए तैयार रहना, बच्चे तुम्हारा इंतज़ार बेसब्री से करते हैं। तुम्हारे आने से सबका मन प्रसन्न हो जाता है। इस बार भी हम सब होलिका दहन खेत पर ही करेंगे और दाल-बाफले, लड्डू भी वहीं बनाएँगे”। तभी सुमति चाची चाय नाश्ता ले आई। निर्मला को वे बिना कुछ खिलाए-पिलाए कभी वापस नहीं

जाने देते थे। तृप्त होकर निर्मला उनकी हिम्मत को मन ही मन दाद देती हुई घर आ गई और मिली तथा निपुण को पिकनिक के बारे में बताया। वे खुशी से उछल पड़े। वैसे आमंत्रित तो उनके पूरे परिवार को किया जाता था लेकिन लीना और विपुल को त्यौहार अपने तरीके से मनाना अच्छा लगता था। बच्चे निर्मला के साथ चले जाते थे तो उन्हें भी मित्रों से मिलने-जुलने की आज़ादी मिल जाती थी।

४-५ दिन खेलते-खाते कैसे निकल गए, पता ही नहीं चला। होलिका-दहन के दो दिन पहले गाँव में जगह-जगह उत्साह पूर्वक डाँडा गाड़ने की तैयारियाँ शुरू हो गईं। गाँव के लोगों की यही विशेषता होती है कि चाहे कितना भी कठिन-काल क्यों न हो पर्वों पर परम्पराओं के पालन में वे कभी पीछे नहीं रहते। मनोहरलाल ने भी घर में पिकनिक की तैयारी करने की घोषणा कर दी। अब निर्मला के घर में उसकी भाभी तो पड़ोस में सुमति चाची अपनी बहुओं के साथ होली के लिए पकवान बनाने में जुट गई। लेकिन निर्मला घूमफिर कर बच्चों के साथ होली का डाँडा गाड़ने के लिए सूखी टहनियाँ एकत्रित करने में व्यस्त हो गई।

होलिका-दहन के दिन तड़के ही सब लोग खेत पर जाने की तैयारी में लग गए। मनोहर ने बच्चों की रुचि देखते हुए दो बढ़िया ताँगे तय करके बुला लिए। वापसी में देर रात होलिका-दहन के बाद अपने निजी ट्रेक्टर-ट्राली से आना तय हुआ। निर्मला को भी ताँगे की सवारी बहुत अच्छी लगती थी, शहर में तो अब ताँगे दिखते ही नहीं। ताँगों के चारों कोनों पर घुँघरू बँधे हुए थे जो ताँगों के चलते ही घोड़ों के टापों की

लय पर बजने लगते थे। मनोहर ने दो बेटों को एक एक ताँगे में महिलाओं व बच्चों के साथ रहने के लिए कहा और खुद एक बेटे के साथ जीप में सारे सामान के साथ खेत का रुख किया। थोड़ी ही देर में पूरा दल खेत पर था।

निर्मला ने घूमते हुए दूर-दूर तक नज़रें दौड़ाईं। छितरी हुई फसल अपनी बरबादी की दास्तान स्वयं सुना रही थी, जो खेत हमेशा लहराते हुए हरे भरे चने और उम्बियों के साथ उनका स्वागत करते थे वे आज पाले की पिटाई से लहूलुहान अपने जख्म दिखा रहे थे। खेत में बना हुआ कुआँ, जिससे खुशी से इतराती हुई नहरों द्वारा पूरे खेत की सिंचाई होती थी, पानी से लबालब भरा होने के बावजूद अपने खालीपन का एहसास ढो रहा था। किनारे-किनारे जिन मेड़ों से बेलों वाली सब्जियों की लताएँ आलिंगन-बद्ध होकर झूमती दिखती थीं, आज उनकी गोद सूनी थी। लगभग तीन चौथाई फसल नष्ट हो चुकी थी। सूना खलिहान भी यह सोचकर चिंतित था कि इस बार उसके खाते में न जाने कितनी फसल जमा हो।

सारी स्थिति भाँपते हुए निर्मला का मन भर आया। छोटे किसानों के तो और बुरे हाल होंगे, यह विचार भी उसे व्यथित करता रहा

लेकिन उसने इस मौके पर कोई बात छेड़ना उचित नहीं समझा। बच्चों की उमंग देखकर वो उनके साथ खेलने और डाँडा गाड़ने में व्यस्त हो गई। इधर सुमति चाची अपनी बहुओं के साथ खलिहान के निकट ही छप्पर के नीचे लीपी हुई जमीन पर ईंटों

का कच्चा चूल्हा बनाकर भोजन की तैयारी में लग गई, उधर बच्चों की वानर-सेना उछल-कूद करती हुई हरे चने और उम्बियों को उदरस्थ करने पहुँच गई। कुछ चने-उम्बियाँ सेकने के लिए लाए गए। सबसे पहले चूल्हे पर होलिका-पूजन के लिए गाँव की प्रथा के अनुसार मीठी रोटी (पूरणपोली) बनाई गई फिर चने-उंबियाँ सेंककर सबने मिलकर नाश्ता किया।

घूमते-खेलते दोपहर हो गई। अब भोजन बनकर तैयार था। सबको भूख भी लग आई थी, अतः पहले मिली और निपुण सहित सभी बच्चों को खिलाने के लिए बिठाया गया। बच्चों ने निर्मला को भी अपने साथ घेर लिया। उसे भी बच्चों से अलग कुछ कहाँ अच्छा लगता था, तो छोटे बच्चों के बीच बड़ी बच्ची बनकर वो उनमें शामिल हो गई।

मनोहरलाल चिंतामग्न खेतों को निहार रहे थे। समय रहते बीमा राशि न मिली तो बची हुई फसल की कटाई के बाद नुकसान का सर्वे होना मुश्किल हो जाएगा। वे इसी सोच में डूबे हुए थे कि सहसा उसकी नज़र बाहर की तरफ अपने खेत के सामने रुकती हुई जीप पर पड़ी। कुछ आगे चलकर पहुँचा तो उसने जीप से पटवारी और उसके ४-५ साथियों को उतरते देख उसकी बाछें खिल गईं। प्रफुल्लित मन से आगे बढ़कर हाथ जोड़कर सबका स्वागत किया। पटवारी ने मुस्कुराते हुए कहा -

“मनोहर भाई, हम सुबह से निकले हैं और आसपास के खेतों का मुआयना करते हुए आ रहे हैं, अब केवल तुम्हारे ही खेत बचे हैं, कल तक सारी रिपोर्ट उच्च अधिकारियों को भेज दी जाएगी”।

“आपकी बड़ी मेहरबानी सरकार, अब आपका ही भरोसा है। आप सब कुछ देर छाँव में आराम कर लीजिये” नम्रता पूर्वक कहते हुए मनोहर लाल उनको खलिहान के निकट नीम के पेड़ के नीचे ले आए और दरी बिछाकर बिठाया फिर पानी पिलाने के बाद एक तश्तरी में सिके हुए चने और उम्बियाँ ले आया। खाते-खाते उनको खलिहान के दूसरी तरफ से रसोई की खुशबू और बच्चों का शोरगुल आने लगा तो पटवारी बोल उठा-

“भाई मनोहर, लगता है आज परिवार के साथ होली मनाने के इरादे से यहाँ डेरा डाले हुए हो, भई हमें तो ज़ोरों की भूख लगी है, कुछ व्यवस्था हो तो...”

“ज़रूर सरकार, मैं अभी आया”। कहते हुए मनोहरलाल ने दूसरी तरफ जाकर सुमति से सबके लिए भोजन परोसने के लिए कहा।

बच्चे भोजन कर चुके थे और धमाल करने एक दूसरे के पीछे भाग रहे थे। सुमति ने चुपचाप मेहमानों के लिए थालियाँ लगा दीं।

इतना स्वादिष्ट भोजन देखकर सबने इत्मीनान से छककर खाया, फिर डकार लेकर उठ गए।

अब रसोई में इतना खाना नहीं था जिससे सभी बड़े सदस्यों की भूख मिटती। स्थिति भाँपकर मनोहरलाल तो अपने खेत पटवारी को खेत दिखाने चला गया और सुमति ने बचा हुआ खाना खेतों की देखभाल करने वाले नौकरों को देकर साफ सफाई करने को कह दिया। गनीमत यह थी कि बच्चों ने भोजन कर लिया था।

खा-पीकर पटवारी साथियों और मनोहर के साथ खेतों का मुआयना करने निकल गए। घूमते-घूमते उसकी लालची निगाहें बचे हुए हरे भरे चने-उंबियों पर ठहर गईं-

“भाई मनोहर कुछ चने-उम्बियाँ बच्चों के लिए ले जाने की इजाजत हो तो...” कहते हुए उसने बात अधूरी छोड़ दी।

“कैसी बातें करते हैं सरकार, यह सब आपका अपना ही है”। कहते हुए उसने नौकरों को बुलाकर पटवारी के साथियों के साथ कर दिया।

और फिर इधर मनोहर, पटवारी के साथ खेतों की हालत बयानी में लगे रहे, उधर उनके साथी चने-उम्बियों के बड़े-बड़े गट्ठर बनवाकर जीप की सीटों के नीचे ठूँस-ठूँस कर भरते गए। पटवारी ने फसल का ५० फीसदी मुआवजा मिलने की रिपोर्ट तैयार की

और जल्द खाते में बीमा राशि आने की बात कहकर अपने हिस्से की भी ताकीद कर दी।

साँझ घिरने लगी थी। सुमति सोच रही थी कि अच्छा हुआ, कि निर्मला ने बच्चों के साथ भोजन कर लिया, लेकिन निर्मला को अपना खाया हुआ अटकने लगा था, उसने मौन साध लिया था और सोच रही थी, कुछ इंतज़ार क्यों न कर सकी। वो हँसना और मस्ती करना भूल गई थी। लग रहा था जैसे अचानक वो बच्ची से बुजुर्ग बन गई हो।

फिर वो मनोहर चाचा की सुध लेने पहुँच गई। उसे सामने देखकर मनोहर ने मन के भाव छिपाकर चेहरे पर मुस्कान ओढ़ ली, लेकिन निर्मला ख़त देखकर उसका मज़मून भाँप चुकी थी। सारा नज़ारा उसके सामने था। वो हमेशा इस कृषक परिवार के साथ खेतों पर पिकनिक मनाने आती रहती थी और सिर्फ उनकी खुशी से ही वाकिफ थी। आज ही उसने जाना कि अचानक आई विपदाओं से किसान कितना दर्द सहन करते हैं, सियासती सर्पों का दंश झेलते हुए भी अपनी परम्पराओं को प्रेमामृत से सींचकर अपनेपन का बाग पल्लवित करते रहते हैं। फिर भी मनोहर का दिल न दुखे इसलिए उसने कोई बात नहीं छेड़ी।

पटवारी ने भी बात का रुख मोड़कर विदा लेते हुए कहा-

“भाई मनोहर, हमारी तो आज शानदार पिकनिक हो गई। पहले मालूम होता तो परिवार के साथ ही आने का कार्यक्रम बनाता, खैर...! अब अगले साल ही सही...”

कुछ ही देर में जीप धुएँ का गुबार उड़ाती हुई चली गई।

ooo ooo ooo ooo

अपने-अपने हिस्से की धूप

एक छोटे से स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो सामने ही गुमटी पर चाय बनती देखकर अभिनव नीचे उतरा. अपना छोटा सा बैग उसने हाथ में ही ले लिया था. चाय पीकर जैसे ही पैसे निकालने लगा, गाड़ी सरकने लग गई. चाय वाला चिल्लाया -

"पैसे रहने दो बेटा, जल्दी जाओ"

अभिनव बदहवासी में दौड़ लगाकर जैसे ही चढ़ा, पीछे से किसी का धक्का लगा और हाथ से बैग छूटकर वहीँ गिर गया. गाड़ी ने गति पकड़ ली थी, वो तुरंत कूद पड़ा तो पैर में मोच आ गई और वो पैर पकड़ कर कराहने लगा. उसके लिए जितना ज़रूरी शहर जाना था, उतना ही उस बैग की हिफाज़त करना, क्योंकि उसमें काफी कैश रकम थी. उसकी यह हालत देखकर एक अधेड़ उम्र के भले इंसान ने उसका बैग लाकर दिया और फिर उसे सहारा देकर समीप ही एक बेंच पर बिठाया. बैग सही सलामत पाकर उसकी जान में जान आई. उसने उस भले मानस का धन्यवाद किया और चिंतातुर होकर इधर-उधर देखने लगा. गाड़ी चली गई थी, रात के दो बजे अब वो कहाँ जाए और शहर कैसे पहुँचे, उसे समझ में नहीं आ रहा था. अधेड़ व्यक्ति उस १७-१८ वर्षीय सुदर्शन किशोर की परेशानी देखकर उसके निकट ही बैठ गया और उसके पूछने पर बताया कि उस स्टेशन से शहर जाने वाली दूसरी गाड़ी चार बजे वहाँ से गुज़रेगी और उसे टिकट खरीदकर यहीं इंतजार करना पड़ेगा.

“ठीक है अंकल, आपका बहुत धन्यवाद, मैं टिकट लेकर आता हूँ.”

टिकट लेकर अभिनव वहाँ आया तो वो व्यक्ति उसे वहीँ बैठा हुआ मिला.

“आप भी अपनी गाड़ी का इंतजार कर रहे होंगे न अंकल...कहाँ जाना है आपको?” बेंच पर बैठते हुए अभिनव ने पूछ लिया.

“नहीं बेटे, मुझे कहीं नहीं जाना, यह प्लेटफोर्म ही मेरा रैन बसेरा है. तुम्हारी गाड़ी आने में दो घंटे और हैं, तब तक मैं तुम्हारे साथ ही रहूँगा. कुछ अपनी सुनाओ, फिर कुछ मेरी सुनना...”

“जी अंकल, समय कटने के साथ मेरा मन भी बहल जाएगा.”

“तुम्हारा नाम क्या है बेटे, तुम्हारे घर में और कौन कौन हैं और शहर किसके पास जा रहे हो?”

“मेरा नाम, अभिनव है. मेरा जन्म गाँव में नाना-नानी के घर हुआ. वहीँ पढ़-लिखकर बड़ा हुआ. घर में हम चारों के अलावा चार नौकर भी रहते हैं. मैं माँ को लेने शहर जा रहा हूँ अंकल, उन्हें पैर फिसलकर गिरने से सिर में अंदरूनी चोट आई थी और गाँव

में सही इलाज न होने से शहर ले जाना पड़ा. एक सप्ताह पहले ही मेरे नाना-नानी तीर्थाटन के लिए निकल गए हैं. मेरी स्कूल की परीक्षाएँ चल रही थीं इसलिए माँ के साथ घर के नौकर शम्भू काका को छोड़ आया था. एक सप्ताह हो चुका है उन्हें अस्पताल में भरती हुए और आज छुट्टी मिलने वाली है."

"बेटे, तुम्हारे पिता क्या करते हैं? "

"मेरे पिता कौन हैं, कहाँ हैं? यह बात जब मैं छोटा था तो माँ नहीं बताती थीं, बस रोने लगती थीं. लेकिन जैसे-जैसे बड़ा होता गया मेरी जिज्ञासा बढ़ती गई, बार बार पूछने पर आखिर माँ ने अपनी सारी कहानी सुनाई कि कैसे वे अपनी सुख-सुविधा और मेरी अच्छी परवरिश की खातिर पति का घर छोड़कर अपने पिता के साथ रहने लगीं. सुनकर मुझे माँ की इस स्वार्थी करतूत पर बहुत क्षोभ हुआ, मैं पहली बार माँ के सामने ऊँची आवाज़ में बोला-

"माँ, मुझे दौलत नहीं पिता चाहियें हमें हर हाल में उनके साथ जाकर रहना चाहिए, मैं अपने बूते पर शहर जाकर खूब पढ़ूँगा और सुख सुविधाएँ जुटाऊँगा."

सुनकर माँ की आँखों में आँसू उमड़ आए, बोलीं-

“बेटे, मैं स्वयं उनका साथ चाहती थी, पता नहीं क्यों मेरी मति भ्रष्ट हो गई थी. माँ-पिता तो मुझे दूसरे विवाह के लिए मनाने लगे थे. वे मुझे अपने सामने अभावों से जूझते नहीं देखना चाहते थे. आखिर यह सारा साम्राज्य उन्होंने मेरे लिए ही तो स्थापित किया था न, लेकिन मैंने साफ इनकार कर दिया था. मुझे विश्वास था कि एक दिन तुम्हारे पिता अपना निर्णय बदल देंगे. क्योंकि जाते-जाते वे कह गए थे कि वे कभी दूसरा विवाह नहीं करेंगे. यह समय तो बस एक दूसरे का मन बदलने के इंतजार में गुज़र गया. अभी भी देर नहीं हुई बेटे, उनका हृदय विशाल है, वे भी मेरा इंतजार कर रहे होंगे और मुझे ज़रूर माफ़ कर देंगे.

“फिर तुमने अपने पिता से मिलने का प्रयास तो किया होगा?”

“नाना-नानी से सहमति लेकर माँ ने मुझे शम्भू काका के साथ अपनी ससुराल के गाँव भेजा था अंकल, इस सन्देश के साथ कि वे हमें माफ़ कर दें और आकर अपने साथ ले जाएँ लेकिन उनके घर पर ताला लगा हुआ था. पड़ोसियों से पूछने पर पता चला कि लगभग ३-४ वर्ष पहले, अपनी माँ की मृत्यु के बाद वे घर छोड़कर कहीं चले गए, फिर वापस नहीं आए.

उस दिन के बाद मैंने माँ को कभी हँसते मुस्कुराते नहीं देखा. आज भी जब उन्हें पिताजी की याद में हर दिन आँसू बहाते देखता हूँ तो मन भर आता है. मैंने उनसे वादा किया है अंकल कि एक दिन उन्हें अवश्य खोजकर ले आऊँगा. उनकी तस्वीर

हमेशा जेब में लेकर चलता हूँ. हर व्यक्ति पर मेरी खोजी नज़र होती है. इतने वर्षों में वे निश्चित ही काफी बदल चुके होंगे फिर भी कुछ निशानियाँ तो शेष होंगी ही. मिल गए तो उन्हें हाथ जोड़कर घर चलने की विनती करूँगा, उन्हें बताऊँगा कि माँ आज भी उनका इंतज़ार करती हैं."

अभिनव की कहानी सुनकर उस व्यक्ति को झटका सा लगा, शंका दूर करने के लिए उसने पूछा-

"तुम्हारे गाँव का नाम क्या है बेटे, क्या तुम अपनी माँ के इकलौते बेटे हो?"

"जी अंकल, मैं अपनी माँ का इकलौता बेटा हूँ और मेरे गाँव का नाम प्रीतमपुर है."

"और पिता का नाम?" धडकते दिल से व्यक्ति ने पूछा.

"प्रेम मोहन..."

"अच्छा, तुम्हारी माँ की ससुराल किस गाँव में है?"

"विष्णुपुरा ग्राम"

...अभिनव प्रेम मोहन... विष्णुपुरा...यानी मैं ही इस युवक का पिता हूँ...वो मन ही मन बुदबुदाया.

आगे अभिनव के होठों ने आगे जो कहा यह प्रेम मोहन के कानों ने नहीं सुना, क्योंकि समय ने पीछे की ओर लम्बी छलाँग लगाकर उसके मस्तिष्क को उन पलों में पहुँचा दिया था, जहाँ उसके उत्तमा के साथ देखे हुए सपनों ने जन्म लेते ही दम तोड़ दिया था.

ooo ooo ooo ooo

वो अपने माँ-पिता की इकलौती संतान था. पिताजी विष्णुपुरा गाँव के जाने माने जमींदार थे. माँ एक सीधी-सादी घरेलू महिला थीं. गाँव में कालेज न होने से और पढ़ाई में अधिक रुचि न होने के कारण स्कूली शिक्षा के बाद वो पिताजी के साथ ज़मींदारी के काम में ही हाथ बंटाने लगा था. जल्दी ही उसका रिश्ता पड़ोसी गाँव प्रीतमपुरा के ज़मींदार की बेटी उत्तमा से तय हो गया. रिश्ता बराबरी का था और सुन्दर, सुशील उत्तमा हर तरह से उसके योग्य थी. शादी के बाद नाम के अनुरूप गुणों की खान उत्तमा ने अपने व्यवहार से सबका दिल जीत लिया था. लेकिन उस घर में बाहर से माहौल जितना सुव्यवस्थित दिखता था, अन्दर ही अन्दर उसमें कई छिद्र हो चुके थे जिनसे माँ की बेबसी और पिताजी का अतिचार स्पष्ट नज़र आता था. माँ ने सरल, समझौता पसंद स्वभाव की महिला होने से घर के इन छिद्रों को अपने सब्र के

पैबंद से ढँक कर रखा था, लेकिन घर में एक खतरनाक तूफ़ान आने की तैयारी हो चुकी थी.

पिताजी उस चढ़ती उम्र में एक विधवा महिला से दिल लगा बैठे थे, वो महिला दोनों हाथों से पिताजी को लूटती रही. बाद में विवाह के लिए दबाव बनाने लगी और ऐसा न करने पर उसने गाँव वालों के सामने सारी पोल खोलने और माँ को सब बताने की धमकी दी.

तंग आकर पिताजी ने सारी बात माँ को स्वयं बताने का फैसला किया और भविष्य में उस महिला से कभी कोई सम्बन्ध न रखने की कसम खाकर माँ से माफ़ी माँग ली. माँ ने तो उन्हें माफ़ भी कर दिया लेकिन कुदरत ने उन्हें माफ़ नहीं किया. उस महिला ने पिताजी के विवाह से साफ इनकार करने पर उनपर बलात्कार का आरोप लगाकर थाने में केस दर्ज करा दिया. पिताजी ने अपनी बेइज्ज़ती से बचने के लिए ज़हर खाकर आत्महत्या कर ली. ये सारी बातें उसे पिताजी के उनके नाम लिखे पत्र से मालूम हुईं. उनके तकिये के नीचे उनके हस्तलिखित दो पत्र मिले थे. एक पत्र में लिखा था-

“मैं अपनी मौत का ज़िम्मेदार स्वयं हूँ, इसके लिए किसी को परेशान न किया जाए.” दूसरा पत्र उसके नाम था जिसमें उन्होंने अपनी बर्बादी की पूरी कहानी विस्तार से लिखी थी, अंत में ये शब्द थे -

“बेटे प्रेम, मैं तुम्हारा और तुम्हारी माँ का गुनाहगार हूँ, उस औरत के चक्कर में मैंने अपने हाथों से अपना आशियाना बर्बाद कर दिया. प्रायश्चित करना चाहा तो कुदरत ने मुझ पापी को यह अवसर भी न दिया. मेरी लगभग सारी सम्पति गिरवी रखी हुई है. लेकिन तुम हिम्मत न हारना और उसे बेचकर क़र्ज़ चुकाने के बाद जो कुछ भी बचे उससे अपने लिए नया काम शुरू करके नई ज़िन्दगी की शुरुवात करना. तुम्हारी माँ बहुत सीधी और सरल है, मुझसे उसे कोई सुख नहीं मिला. उसकी जवाबदारी भी मैं तुमपर छोड़ता हूँ. उसका पूरा ध्यान रखना और कभी अपने से दूर न करना. हो सके तो मुझे माफ़ कर देना.”

-तुम्हारा बदनसीब पिता

उसने पुलिस के आने से पहले वो पत्र छिपा लिया था. अब उसके ऊपर बहुत सी जवाबदारियाँ थीं. विवाह को केवल ४ माह ही हुए थे, उत्तमा के पिता मातमपुर्सी के लिए आए तो माँ से बेटी को कुछ समय अपने साथ ले जाने की अनुमति माँगी. वे हमारी बर्बादी की पूरी कहानी से वाकिफ हो चुके थे. माँ तो अपने आपे में ही नहीं थीं उन्होंने उसकी तरफ इशारा कर दिया था. उसे ससुर जी का प्रस्ताव उचित लगा था, उत्तमा दो माह से गर्भवती थी, उसने पत्नी के आराम के विचार से ससुरजी के साथ भेज दिया था.

माँ के सामान्य होने और परिस्थितियों के अनुकूल होने में दो महीने गुजर चुके थे, इस बीच बहुत कुछ ख़त्म होने के बाद भी काफी कुछ शेष था. उसे मकान से बेदखल नहीं होना पड़ा और पिताजी का सारा क़र्ज़ चुकाने के बाद शेष बची रकम से उसने एक छोटी सी किराने की दुकान खोल ली थी. इसके बाद माँ के कहने पर वो उत्तमा को लेने ससुराल गया. वहाँ ससुर जी ने खूब स्वागत सत्कार किया, फिर घर गृहस्थी के हालचाल पूछने के बाद मौका देखकर उत्तमा की उपस्थिति में ही कहा था -

“प्रेम बेटे, तुम जानते हो कि उत्तमा मेरी इकलौती बेटी है और वही मेरी सारी सम्पति की वारिस भी. वो तुम्हारे साथ इतना कठिन जीवन व्यतीत नहीं कर पाएगी. मैं चाहता हूँ कि तुम अपनी माँ को शहर के एक अच्छे वृद्धाश्रम में भर्ती करके यहाँ आकर मेरा कारोबार सँभालो. इसके लिए रकम की सारी व्यवस्था मैं कर दूँगा”

वो यह सुनकर सकते में आ गया था और कहा था-

“पिताजी, मैं अपनी माँ को कभी खुद से दूर नहीं करूँगा वो मेरी पहली ज़िम्मेदारी है, उत्तमा मेरी पत्नी है, मेरे साथ रहकर वो कभी दुखी नहीं हो सकती, मैं उसे भी प्रसन्न रखने का पूरा प्रयास करूँगा.” कहते हुए उसने एक नज़र पत्नी पर डालकर पूछा था-

“तुम क्या चाहती हो उत्तमा?”

“आपको पिताजी का प्रस्ताव मान लेना चाहिए. मैं अभावग्रस्त जीवन जीने की आदी नहीं हूँ प्रेम...और हमारे साथ हमारी संतान की अच्छी परवरिश की ज़िम्मेदारी भी हमपर है, आखिर यह सब हमारा ही तो है...”

“ठीक है, अगर तुम भी यही चाहती हो तो मैं जा रहा हूँ, मैं नहीं जानता था कि सुख-सुविधाएँ तुम्हें मुझसे अधिक प्यारी हैं. आज के बाद मैं यहाँ कभी नहीं आऊँगा, पर तुम्हें जब भी अपने निर्णय पर पछतावा हो, तो बेहिचक मेरे पास आ सकती हो, मैंने तुम्हारी दौलत से नहीं तुमसे विवाह किया है और कभी दूसरा विवाह नहीं करूँगा. तुम्हारे लिए मेरे घर और दिल का व्दार हमेशा खुला रहेगा.” इतना कहकर वो वापस चला आया था.

माँ के पूछने पर उसने वृध्दाश्रम वाली बात छिपाकर बाकी सब बताते हुए कहा था कि उत्तमा अब यहाँ कभी नहीं आएगी.

कुछ महीनों बाद ससुराल से उनके नौकर द्वारा पुत्र-जन्म का सन्देश आया, शायद इस उम्मीद के साथ कि वो अपना निर्णय बदल देगा, पर वो अपनी बात पर अडिग था. दोनों तरफ उसकी ज़रूरत थी और जवाबदारी भी. लेकिन माँ का पलड़ा निश्चित ही भारी था.

इस तरह १०-१२ वर्ष गुज़र गए. माँ भी आखिर कब तक ज़ख्म सीने पर लिए जीती, एक बार उसने बिस्तर पकड़ लिया तो फिर नहीं उठ सकी. उसपर दूसरे विवाह का भी दबाव बनाया था लेकिन उसने साफ़ इनकार कर दिया था. उसे विश्वास था कि उत्तमा एक न एक दिन ज़रूर पछताएगी और उसके पास वापस चली आएगी, अब तो उसका पुत्र भी काफी बड़ा हो चुका होगा, शायद अब...पर वो दिन कभी नहीं आया और माँ भी उसे रोता बिलखता छोड़कर हमेशा के लिए चली गईं.

अब वो अपने जीवन से पूरी तरह हताश हो चुका था, आखिर अकेला किसके लिए संघर्ष करता, माँ के जाने के बाद उसका मन उस गाँव में नहीं लगा, उत्तमा के आने का भी कोई आसार नहीं था. उसने अब किसी दूसरे ठौर पर रहकर अपना जीवन दुखियों की सेवा में अर्पण करने का व्रत लिया और उसके कदम रेलवे स्टेशन की और चल पड़े थे. सामने जो गाड़ी तैयार दिखी वो उसमें चढ़ गया था, उस गाँव की स्मृतियों से दूर जाने के लिए. टिकट चेकर आया तो उसे बिना टिकट पाकर इस स्टेशन पर उतार दिया था. गनीमत यह हुई कि उसके रोने गिड़गिड़ाने पर शरीफ समझते हुए पुलिस को नहीं सौंपा. तब से आज तक वो इसी स्टेशन पर छोटे मोटे कार्य करके जीवन यापन कर रहा है, भूले भटके इंसानों की सहायता करके उसे आत्मिक शांति मिलती है.

अतीत से वर्तमान में लौटते ही वो सोचने लगा, अभि ने सिर्फ माँ का दर्द देखा है. काश! वो मेरे दिल में भी झाँक सकता तो जान जाता कि उनकी जुदाई में उसकी

कितनी रातें रोई हैं, आँसुओं के कितने सैलाब उमड़कर उसकी नींदें बहा ले गए और अब इन आँखों की कोरों में थोड़ी भी नमी शेष नहीं. आखिर पुरुष भी एक इंसान ही होता है, पाषाण नहीं...शायद खुदा की खुदाई उसके आँसुओं के उस सैलाब में डूबने लगी होगी तभी तो उसने इतनी खूबसूरती से उनके मिलन की व्यवस्था कर दी...

सोचते सोचते भावातिरेक से अचानक उसकी हिचकियाँ बंध गईं.

स्टेशन के उस हिस्से में काफी अँधेरा होने से अभिनव न तो उसका चेहरा ठीक से देख सका था न ही उसके हावभाव जान सका.

सहसा वो बोल पड़ा -
"अरे अंकल, आपको क्या हो गया? आप ठीक तो हैं न...मेरी चिंता आप बिलकुल न करें...देखिये, मेरी गाड़ी आने की घोषणा हो गई है और मैं जा रहा हूँ...इतने समय साथ देने का बहुत-बहुत धन्यवाद..."

"रुको अभि, मैं भी तुम्हारे साथ चल रहा हूँ अपनी उत्तमा को लेने...नियति के नियोजित घटनाक्रम के घेरे को तोड़ने की शक्ति किसी इंसान में नहीं होती बेटे... हम सबने अपने-अपने हिस्से की धूप झेल ली है और अब हमें एक दूसरे की छाँव की ज़रूरत है."

ooo ooo ooo ooo

काश! बेटियाँ होतीं

अरे छाया! तुम यहाँ?

“हाँ ज्योति, मेरा विवाह इसी शहर में हुआ है लेकिन तुम...?

“मेरा भी, छाया...”, ज्योति हँसकर बोली।

बचपन की सहेलियाँ छाया और ज्योति इस समय शहर के माल में अपने-अपने पति के साथ खरीदारी करने आई हुई थीं, और एक ही स्टॉल पर खरीददारी करते हुए ज्योति की नज़र छाया पर पड़ गई। खड़े खड़े ही खूब बातें हुईं फिर दोनों ने अपने-अपने पतियों का परिचय भी अपनी-अपनी सहेली से करवाया और एक दूसरे को अपने घर का पता देकर आने का निमंत्रण भी दे डाला।

यह शायद इत्तफाक ही था कि एक ही शहर के स्कूल, कॉलेज में एक साथ पढ़ने वाली इन दो सहेलियों का विवाह भी निकट के एक ही शहर में हुआ था। फर्क केवल इतना था कि वे मायके में एक दूसरी के पड़ोस में रहती थीं और यहाँ ससुराल कुछ दूर-दूर थे, लेकिन यह दूरी उनकी मित्रता में बाधा नहीं बनी और उनका एक दूसरे के घर आना जाना शुरू हो गया। दोनों के पति सरकारी नौकरी में थे तो लेकिन दफ्तर

अलग-अलग इलाकों में थे, फिर भी अपनी बीवियों की गाढ़ी मित्रता के कारण वे भी आपस में अच्छे मित्र बन गए।

हर सप्ताहांत में मिलना घूमना, खरीदारी करना खाना-पीना सब एक साथ ही होता। दिन गुजरते गए और दो साल बाद ही छाया की गोद में दो बेटे और ज्योति की गोद में दो बेटियाँ आ गईं और दोनों ने अपना परिवार नियोजित कर लिया अब उनका मिलना-जुलना दिनों के बजाय महीनों में होने लगा।

दो-दो बच्चों के बाद उनकी व्यस्तता बढ़ती गई और मुलाक़ातों के बीच लंबा फासला होने लगा।

जिम्मेदारियों का निर्वाह करते-करते लंबा अरसा बीत गया। छाया का घर दो बहुओं से गुलज़ार हो गया और ज्योति की बेटियाँ ससुराल चली गईं। दोनों सहेलियों के सास-ससुर तो नहीं रहे लेकिन साल-दर-साल पोते पोतियों के आगमन से छाया के परिवार में वृध्दि होने से उसका ज्योति के यहाँ आना-जाना कम हो गया। ज्योति को तो अब सूनापन काटने दौड़ता था, वो एक तरफा ही अपना मन हल्का करने छाया के पास जयेश के साथ आ जाती थी। छाया को न आने का उलाहना देती तो वो अपने बढ़ते परिवार का हवाला देकर कहती -

“भई हमारा समय तो मूलधन, ब्याजधन ने ही बाँट लिया है, तुम लोग आ जाते हो तो बहुत अच्छा लगता है।

लेकिन ज्योति भी कब तक आना जाना करती, तो मुलाकातों में फासला बढ़ता ही गया. फिर अचानक जयेश का तबादला दूसरे शहर में हो गया और सखियों के मिलने जुलने का सिलसिला सिमटकर मोबाइल पर बातचीत तक रह गया।

नई जगह पर ज्योति का मन बिलकुल नहीं लगता था। यहाँ पड़ोस मुहल्ले में भी आना जाना कम ही था तो ज्योति ने समय काटने के लिए कंप्यूटर से नाता जोड़ लिया।

इस विस्तृत दुनिया में उसका मन खूब रम गया। कहानियाँ पढ़ने और बच्चों को सुनाने का उसे बचपन से ही शौक था। अब उसका यह शौक पुनर्जीवित हो गया। पढ़ते-पढ़ते कब कलम हाथ में आई और कागज़ काले होने लगे उसे पता ही न चला। समय तो जैसे हवा से होड़ लेने लगा था। धीरे-धीरे कहानियों पर उसकी पकड़ अच्छी जम गई।

छाया से बातचीत होती रहती लेकिन मिलना फिर नहीं हो पाया। कभी कभी अपने हालचाल एक दूसरे को अवश्य साझा करतीं। इस तरह एक लम्बा अरसा गुज़र गया। फिर उनकी बातों का सिलसिला भी अचानक बंद हो गया। छाया का मोबाइल हमेशा

स्विच ऑफ़ बताता। आखिर वो समय भी आ गया जब जयेश सरकारी नौकरी से सेवामुक्त हो गए। अब वे अपना समय समाजसेवा में काटने लगे। ज्योति को भी अब शारीरिक ऊर्जा में कमी महसूस होने लगी थी लेकिन कलम को इससे क्या लेना देना! उसे तो अपनी खुराक चाहिए ही, तो उसने घर के कार्यों के लिए एक गरीब अधेड़ महिला सुमित्रा को रख लिया और कलम की उदरपूर्ति के लिए अपने आसपास बिखरी कहानियों को सहेजना शुरू कर दिया। झूलाघर, नारी-निकेतन, अनाथालय, आरोग्य-केंद्र, आदिवासी बस्तियाँ आदि स्थानों से नित्य नई कहानी का किरदार खोज लाती और उसे पन्नों पर साकार करती रहती।

कभी-कभी बेटियाँ अपने बच्चों के साथ मिलने आ जातीं, तो कभी पति-पत्नी लम्बे भ्रमण पर निकल जाते। इस बार होली निकट थी तो उन्होंने वृन्दावन-मथुरा जाकर देवदर्शन के साथ ही श्री कृष्ण की लीला-स्थली ब्रिज भूमि पर बरसाने की लठमार होली देखने का कार्यक्रम बनाया और एक पर्यटन-बस में अपना आरक्षण करवा लिया। फिर घर की देखरेख की जवाबदारी सुमित्रा को सौंपकर वे निश्चित दिन मथुरा पहुँच गए।

होली में अभी ८ दिन बाकी थे, प्रतिदिन वे बारी-बारी वहाँ के प्रसिद्ध पौराणिक स्थल घूम-घूम कर देखते और आनंदित होते रहे। ज्योति हर स्थान के अपने अनुभव कलमबद्ध करती रही। अब केवल वृद्धाश्रम रह गये थे जो ज्योति की नई कहानी के केंद्र बिंदु थे. होटल से पूरी जानकारी लेकर एक दिन वो सुबह जल्दी ही पति के साथ

चल पडी. सबसे पहले वे एक पुराने महिला आश्रय-स्थल पर पहुँचे, जहाँ विधवा और परित्यक्ता वृद्ध महिलाएँ अपने अंतिम समय में देश के हर कोने से आकर शरण लेती थीं। ज्योति और जयेश संचालकों से अन्दर जाने की अनुमति लेकर आगे बढ़े तो देखा, कुछ बुजुर्ग महिलाएँ झुण्ड बनाकर कहीं जाने को तैयार थीं। गेरुए वस्त्र, माथे पर गेरुआ तिलक और गले में रुद्राक्ष की माला डाले सबकी वेशभूषा एक जैसी थी, लगता था जैसे कहीं विशेष अभियान पर जा रही हों।

तभी अचानक एक महिला पर उसकी नज़रें स्थिर हो गईं। ज्योति को उसकी सूरत पहचानी सी लगी। गौर से देखा तो आश्चर्य से आँखें खुली रह गईं, पलकें झपकना भूल गईं। वो छाया थी। लगभग बरसों बाद उसे इस हाल में यहाँ देखकर ज्योति सकते में आ गई, चार सालों से उसका मोबाइल स्विच-ऑफ़ मिलने का सारा रहस्य भी उसे समझ में आ गया। तेज़ी से चलकर उसके सामने पहुँची तो छाया भी विस्मित होकर उसे देखती रह गई और एकाएक उसकी आँखों से जैसे रुका हुआ झरना फूट पड़ा।

उसने अपनी साथिनों से क्षमा माँगी और ज्योति-जयेश को अपने कमरे में ले आई।

“यह तुमने क्या हाल बना रखा है छाया? तुम्हारा परिवार, सुनील भाई साहब, सब कहाँ हैं?” ज्योति ने छाया को गले लगाते हुए पूछा। उसे रोते देखकर उसकी ऑंखें भी नम हो चली थीं।

“मैं तुम्हें अपनी इन गुमनाम गलियों में गुम हो जाने की पूरी दास्तान सुनाऊँगी ज्योति, तुम दोनों आराम से बैठो...” कहते हुए उसने टेबल पर ही रखे हुए कुछ ताजे फल उन्हें खाने को दिए, फिर हिचकियों को रोककर अपनी कहानी शुरू की -

“तुम विश्वास नहीं करोगी ज्योति, कि कभी-कभी हमारे साथ ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं कि दिमाग चक्करघिन्नी बनकर रह जाता है। नियति हमारे आसपास परिस्थितियों का ऐसा ताना-बाना बुनती है कि हम, न जाने क्यों...? उसमें सहर्ष फँसते चले जाते हैं और हमें पता ही नहीं चलता कि कब हमारी सुखद सपनों सी ज़िन्दगी दुखद दास्तान बन चुकी है। हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ।

ज़िन्दगी अपनी निर्बाध गति से अच्छी तरह गुज़र रही थी कि एक रात अचानक ही नींद में सुनील की चीख सुनकर मैं जाग गई। देखा तो डर के मारे उनके हाथ पैर काँप रहे थे, यह सुबह के लगभग ५ बजे का समय था। मैंने घबराकर पूछा -

“क्या हुआ सुनील, कोई डरावना सपना देखा क्या”?

“हाँ छाया, सफ़ेद कपड़ों में कुछ लोग एक अर्थी लेकर ‘राम नाम सत्य है...’ कहते हुए जा रहे थे, फिर एक बड़े नामपट्ट पर बड़े-बड़े लाल अक्षरों में ‘वृन्दावन’ लिखा हुआ देखा। फिर देखा तो वो अर्थी मेरी थी और तुम...तुम भिक्षुणी के भेष में एक घर के

व्दार पर भीख माँग रही थीं। मेरा दिल तो किसी अनिष्ट की आशंका से बैठा जा रहा है।"

सुनकर मैं भी सकते में आ गई थी लेकिन हिम्मत करके उनको हौसला देते हुए कहा-

"सपने भी कभी सच हुए हैं क्या सुनील?, कभी-कभी स्वास्थ्य की गड़बड़ी की वजह से भी हम बुरे सपने देखते हैं। चलो उठ जाओ, सुबह हो चुकी है, मैं बढ़िया सी चाय बनाती हूँ।"

"लेकिन छाया यह सपना बिलकुल अलग था, जो उन्हीं रंगों के साथ मेरे मन-पटल पर अंकित हो गया है। कहते हैं इस तरह के सपनों में कुछ न कुछ सच्चाई अवश्य होती है।"

"अरे! कहा न, यह केवल वहम है, भूल जाओ कि तुमने कोई सपना देखा है।"

बात उस समय आई गई हो गई और धीरे-धीरे सुनील सपने की बात भूल गए। दो तीन वर्ष आराम से गुज़र गए फिर सुनील के रिटायर होते ही घरेलू परिस्थितियों में बदलाव आने लगा। बच्चे बड़े हो चले थे तो सास-ससुर का दो कमरे और हाल वाला पुश्तैनी मकान छोटा पड़ने लगा था। बेटों की शादी के बाद हम एक-एक कमरा उनको सौंपकर हाल में किसी तरह गुजर कर रहे थे, लेकिन अब बेटों को बढ़ते हुए दो-दो

बच्चों के साथ एक-एक कमरे में परेशानी होने लगी थी और हमें भी इस थकी उम्र में एक अलग सुविधाजनक कमरे की आवश्यकता महसूस होने लगी थी। अतः हमने रिटायरमेंट के बाद मिली रकम से मकान की छत पर कमरे बनाने का विचार किया।

लेकिन काम शुरू करने से हमें ही परेशानी होती, क्योंकि ऊपर जाने वाली सीढ़ियाँ हाल के अन्दर से ही जाती थीं, सो बड़े बेटे संजय ने सुझाया कि हर साल सरकार की तरफ से एक विशेष सुविधा संपन्न ट्रेन वरिष्ठ नागरिकों के लिए देश के प्रमुख धार्मिक स्थलों के भ्रमण हेतु चलाई जाती है। एक महीने की समय सीमा में अनेक स्थानों पर देवदर्शन के साथ ही दर्शनीय स्थलों का भी आनंद लिया जा सकता है। अगर हम चाहें तो उस गाड़ी में हमारा आरक्षण करवा लिया जाए, मकान का काम एक बार शुरू हो जाए तो आसपास किसी किराए के मकान में कुछ समय के लिए शिफ्ट हो जाएँगे।

बात सही थी और हम भी एकरसता की ज़िन्दगी से ऊब गए थे, भ्रमण की बात सुनते ही बदलाव के विचार से हम सहर्ष तैयार हो गए और नियत तिथि पर उत्साहपूर्वक लम्बी यात्रा के लिए निकल पड़े।

गाडी हर पड़ाव पर दो दिन रुकती और हम आराम से घूम-फिरकर गाड़ी में ही सोकर रात गुजारते। गाड़ी का अंतिम पड़ाव यही वृन्दावन था। बेटों से प्रतिदिन मोबाइल पर बातचीत होती रहती थी। काम शुरू हो चुका था लेकिन किराए का मकान सुविधाजनक

न होने से बड़े बेटे संजय ने हमें कुछ समय यहीं विश्राम करने की बात कही और कहा कि यहाँ हम किसी होटल में ठहर जाएँ, वो कल ही यात्री बस से वहाँ पहुँच जाएगा फिर हमारे रहने की व्यवस्था पर विचार करेंगे।

अगले दिन देर रात को वो हमारे पास पहुँचा। सुबह होते ही वो होटल से निकल गया और हमारे रहने के लिए एक सरकारी वृद्धाश्रम में फॉर्म भरकर आया। उसके कथनानुसार रहने के अन्य आवास कुछ सुविधाजनक नहीं थे तो कुछ बहुत महँगे थे, प्राइवेट वृद्धाश्रम में भी लाखों रूपए अग्रिम देने के बाद ही प्रवेश मिलता था। हमारे पास और कोई चारा भी नहीं था। सब्र के साथ मन पर पत्थर रखकर हम वहाँ पहुँच गए और बेटा हमें अपना ध्यान रखने को कहकर वापस चला गया।

कुछ दिनों के बाद ही वृध्दाश्रम के कठोर अनुशासन में हमारा दम घुटने लगा था, सुनील कुछ अस्वस्थ महसूस करने लगे थे। घर और बच्चों की याद अलग से सता रही थी। लेकिन पूछने पर बेटों को अपनी तकलीफ कभी नहीं बताई. हम समय काटने के लिए भोजन के बाद दिन भर घूमने निकल जाते फिर शाम तक लौट आते। इस तरह ६ महीने निकल गए। जब संजय ने फोन पर बताया कि मकान का काम पूरा हो चुका है, बस रंग रोगन होते ही वो हमें लेने आ जाएगा। हम बेसब्री से इंतजार करने लगे। तभी अचानक एक दिन सुनील सुबह उठे तो उनके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। डर की छाया स्पष्ट झलक रही थी पूछने पर उसने वही मनहूस सपना पुनः देखने की बात बताई और कहा ज़रूर कुछ अशुभ होने वाला है।

सुनकर मेरा मन भी कुशंकाओं के भँवर में डूबने-उतराने लगा था लेकिन सुनील को मैं कमज़ोर होते नहीं देखना चाहती थी, अतः मैंने हँसते हुए उनको यह वहम मन से निकाल देने के लिये कहा और बताया कि रात में ही संजय का फोन आया था कि वो कल यहाँ पहुँच रहा है। उसके आते ही हमारी जान में जान आई। उसने हमारा हालचाल पूछा और यह भी कि हमें यहाँ कोई परेशानी तो नहीं? लेकिन लम्बी चौड़ी चर्चा के दौरान उसने हमारी वापसी की बात ही नहीं छेड़ी तो मैंने ही पूछा -

“बेटा, वापसी के लिए कौन सी गाड़ी का आरक्षण है और यहाँ से कब निकलना है?”

सुनते ही उसका मुँह लटक गया और सिर झुकाकर मरी सी आवाज़ में बोलना शुरू किया -

“बात दरअसल यह है माँ, कि आपकी दोनों बहुएँ आपस में लड़-झगड़ कर अलग हो गई हैं और छोटे ने ऊपर वाले मकान में अपनी गृहस्थी जमा ली है। अब हमारे हाथ में कुछ पैसा भी नहीं बचा कि एक कमरा और बाँध सकें। ऊपर नीचे तो दो-दो कमरे ही हैं, समझ में नहीं आता कि आपकी व्यवस्था कहाँ की जाए, अगर आप यहीं रहें तो हम आपको कोई परेशानी नहीं होने देंगे और मिलने ले लिए आते रहेंगे।”

मैं कुछ बोलती उससे पहले ही सुनील उसका आशय समझकर चीख पड़े -

“चले जाओ यहाँ से, तुम्हें हमारे लिए चिंतित होने की कोई आवश्यकता नहीं है और फिर कभी अपनी मनहूस शक्ल हमें मत दिखाना...”

मुझे तो जैसे काठ मार गया था, जुबान ही साथ नहीं दे रही थी, कि कुछ कह सकूँ और संजय सिर झुकाकर तुरंत वहाँ से उठकर चला गया।

उसी रात सुनील को दिल का दौरा पड़ा, मेरी चीख पुकार सुनकर वृद्धाश्रम के सब लोग एकत्र हो गए और उन्हें तुरंत चिकित्सालय ले जाया गया। गहन चिकित्सा कक्ष में इलाज शुरू हुआ और दो दिन बाद उन्होंने आँखें खोलीं.”

“अब मैं सब कुछ भूलकर दिन-रात उनकी सेवा में जुट गई थी। उन्हें अधिक बोलना मना था। उनका देखा हुआ सपना अब मुझे भी विचलित करने लगा था, फिर भी डर को अपने ऊपर हावी होने न देकर मैं हिम्मत से परिस्थिति का सामना कर रही थी।

धीरे-धीरे सुनील कुछ स्वस्थ हुए तो एक दिन मुझे पास बिठाकर बोले -

“छाया मुझे लगता है, मेरा अन्तकाल निकट है, एक बात तुमसे कहना चाहता हूँ, मेरे बाद तुम खुद को कभी कमज़ोर न होने देना। मेरी मृत्यु की खबर बेटों तक न पहुँचे। मेरा क्रियाकर्म भी इसी देव-भूमि पर हो और तुम भी कभी किसी भी विपरीत स्थिति में वहाँ वापस जाने की बात न सोचना, स्वयं को मजबूत रखते हुए यहीं पर अपने

जीवन के शेष दिन बिता देना। तुम्हें वादा करना होगा कि मेरी यह अंतिम इच्छा अवश्य पूरी करोगी। मेरी पेंशन तुम्हें मिलती रहे, इसकी व्यवस्था मैं पहले ही कर चुका हूँ।”

कहते हुए वे बच्चों जैसे फफककर रो पड़े। मेरा दिल स्वयं हाहाकार कर रहा था पर सुनील की ज़िन्दगी के लिए अपने मन के भाव भाव चेहरे पर नहीं आने देकर उनको आश्वस्त कर रही थी कि वे शीघ्र ठीक हो जाएँगे। हम दोनों मिलकर यहाँ ज़िन्दगी गुज़ार लेंगे।

शीघ्र ही उन्होंने वृध्दाश्रम के संचालकों की सहायता से हम दोनों के मोबाइल नंबर भी बदलवाकर बेटों से हमेशा के लिए संपर्क काट दिया।

उसके लगभग दो माह बाद ही उन्हें दूसरा दौरा पड़ा और सब कुछ ख़त्म हो गया। मुझे उनकी अंतिम इच्छा पूरी करनी ही थी, तो सबके समझाने के बावजूद बेटों को खबर नहीं की। पर मेरा मन अब उनके बिना उस आश्रम में नहीं लगा। तुम्हीं बताओ सखी, वहाँ रहना अब कैसे संभव होता? मैंने संचालकों से किसी अन्य आश्रय स्थल पर भेजने की विनती की। इस तरह मैं इस निराश्रित और विधवा महिलाओं के आश्रम में पहुँच गई। मैं तुम्हें कभी नहीं भूली ज्योति, बीते दिनों की बातें और यादें पल-पल सताती रहतीं। मूलधन-ब्याजधन के गणित में उलझकर हमने अपना जीवन धन ही दाँव पर लगा दिया।

सुनील का वो खौफनाक सपना आश्चर्यजनक रूप से सच हो गया था। जब तुम यहाँ आईं तो मैं अपनी साथिनों के साथ भिक्षाटन के लिए ही जा रही थी। हम सब आर्थिक अभाव न होते हुए भी शरीर के अंगों को सक्रिय रखने के लिए प्रतिदिन घर घर जाकर भिक्षा माँगती हैं और मिले हुए पैसों से अभावग्रस्त महिलाओं की सहायता करती हैं। बस ज्योति, यही मेरी कहानी है। मैं अपनी कथा सुनाने के चक्कर में तुमसे पूछना ही भूल गई कि तुम लोग कैसे अपना समय काट रहे हो।"

"हमारी कथा सीधी सी है सखी, बेटियों के ससुराल जाने के बाद मैंने कलम का और जयेश ने समाजसेवा का सहारा लिया। यहाँ भी मैं कहानी की खोज में ही आई थी तो तुमसे मुलाकात हो गई। अब इतना दर्द मेरी कलम किस तरह कागज़ पर उतारेगी? क्या लिखते हुए ये हाथ नहीं कापेंगे?"

"तो तुम अब लेखिका बन गई हो ज्योति...! एक रहस्य आज सिर्फ तुम्हारे सामने खोल रही हूँ कि पहली बार मेरे गर्भ में बेटी थी तो मैंने पुत्र मोह वश अबार्शन करवा लिया था. लगता है, उसी का ही दंड शायद मैं अब भुगत रही हूँ. काश! हमारी भी बेटियाँ होतीं तो हम इस तरह बेघर न हुए होते...!! मेरी कहानी तुम ज़रूर लिखना, साथ ही मेरा यह सन्देश भी समस्त माँ-बहनों को पहुँचाना कि वंश बढ़ाने की चाह में बेटों के मोह में पड़कर बेटियों, यानी अपने ही अंश को गर्भ में ख़त्म करके कुदरत को कुपित करने की भूल कभी न करें..."

ooo ooo ooo ooo

ग्रीन सिग्नल

“वृध्दाश्रम...??? ओह बेटे, तुमने यह सोच भी कैसे लिया कि मैं इसके लिए तैयार हो जाऊँगी...?”

दुखातिरेक से तरुणा की आँखों में आँसू उतर आए.

देवेश सामने ही सिर झुकाए खड़ा था, संयत स्वर में बोला -

‘‘माँ मैंने सिर्फ पूछा है आपसे, आप तो जानती हैं, आपकी इच्छा के बिना मैं आपके बारे में कोई निर्णय नहीं ले सकता. आप एक बार ठण्डे मन से विचार कर लीजियेगा, मुझे फैसला करने के लिए तीन महीने का समय दिया गया है, मैं तनु को लेने जा रहा हूँ...दो दिन बाद हम वापस आएँगे”. कहते हुए वो बाहर निकल गया.

बहू तन्वी १५ दिन के लिए मायके गई हुई थी. अब बेटे के जाने से दो दिन उसे अकेली ही रहना है.

तरुणा यह तो समझती थी कि आजकल छोटी-मोटी नौकरी से गुज़ारा होना बहुत मुश्किल है. लगातार प्रयास करते-करते अब दुबई से एक अच्छे जॉब का ऑफर आया है, कह रहा था-वहाँ तनवी को भी कोई न जॉब आसानी से मिल जाएगा और आजकल

दूरियाँ रह ही कहाँ गई हैं, ऑनलाइन फलक पर पूरी दुनिया एक मंच पर अवतरित हो जाती है. यह फ़्लैट बेचकर उसकी व्यवस्था एक अच्छे से प्राइवेट वृध्दाश्रम में सर्व-सुविधा जनक कमरे में करके जाएगा, जहाँ वो कंप्यूटर द्वारा परिवार से जुड़ी रहेगी और वहाँ अच्छी तरह सेटल होने के बाद उसे भी साथ ले जाएँगे... लेकिन तरुणा का मन वृध्दाश्रम का नाम सुनते ही डांवांडोल होने लगता है. अपना देश छोड़कर तो वो कभी भी कहीं नहीं जाएगी, बेटा क्या जाने...साथी के चले जाने के बाद वो कितनी अकेली हो गई है. अपनों के बिना वो कैसे जी पाएगी...?लाख महफ़िलें हों लेकिन मन का मंच, मीत बिना गुलज़ार हो सकता है क्या? न जाने आजकल के बच्चों को हो क्या गया है, परिवार छोटे क्या हुए, बड़े-बुजुर्गों की किश्ती मझधार में ही अटकी हुई रहने लगी है. पर वो भी भावनाओं में नहीं बहने वाली...बच्चों की खिलखिलाहट ही तो उसके जीने का सहारा है...उनके बिना तो फूलों से भी काँटों की चुभन महसूस होती रहेगी. सोचते-सोचते सिर दर्द से फटने लगा और पति की याद ने उसके दिमाग पर आकर कब्ज़ा कर लिया.

ooo ooo ooo ooo ooo

ग्रेजुएशन पूरी होते ही उसका विवाह कर दिया गया. मन में सतरंगी सपने लिए ससुराल आई तो पता चला कि पतिदेव को टूरिंग जॉब के कारण ५ दिन बाहर रहना पड़ता है और वे सप्ताह में दो दिन ही घर आ पाते हैं, ये दो दिन भी सफ़र की थकान उतारने में निकल जाते. साथ लेकर भी जा नहीं सकते थे. इस तरह उसे पति

के साथ लम्बे समय साथ रहना कभी नसीब नहीं हुआ. सास-ससुर के साथ महानगर मुम्बई के इस दो कमरे के फ़्लैट में ही रहते हुए उसका समय बीतने लगा. शिकायत करती तो वे अपनी मजबूरी बताकर उसे समझा देते. फिर एक दिन उन्होंने उसे कंप्यूटर सीखने के लिए प्रोत्साहित किया. पहले तो वो आनाकानी करती रही, उसे यह सब लफड़ा लगता था. पति समझाते-

"देखो तरु, एक बार तुम ऑनलाइन ज़िंदगी के चमत्कार देख लोगी तो कंप्यूटर से ऐसे चिपक जाओगी कि अपने आसपास की दुनिया को भी भूल जाओगी." और सचमुच हुआ भी यही था. अब तो वे जब भी घर आते, मनुहार करके पास बिठाकर अपना कंप्यूटर ऑन करके बारीकियाँ सिखाते, वो भी हैरान सी इस तिलिस्मी दुनिया से रूबरू होती रहती. फिर एक दिन उसके लिए नया कंप्यूटर भी आ गया. अब तो उसकी दिनचर्या ही बदल गई थी. प्रतिदिन शाम को घर के कार्य जल्दी-जल्दी निपटाकर कंप्यूटर पर पति का चैट-बॉक्स खोलकर उनके ऑनलाइन आने का इंतजार करने लगती. उनके ऑफिस से आते ही सिग्नल ग्रीन हो जाता और तरुणा का मन ख़ुशी से उछलने लगता. वीडियो-चैट पर घंटों प्यार भरी बातें होतीं, फिर दूसरे दिन मिलने के वादे के साथ दोनों विदा होते. फिर कुछ ही समय में एक बेटे और एक बेटी के जन्म के बाद वो उनकी परवरिश में व्यस्त होती चली गई, लेकिन चैट पर मिलना यथावत था. धीरे-धीरे बच्चे बड़े होकर बड़ी कक्षाओं में पहुँच गए. इस बीच उसके सास-ससुर भी एक एक करके स्वर्गवासी हो गए. अब चेतन जब भी घर आते, कहा करते -

“तरु, हमें आज तक साथ रहने का सुख नहीं मिला मगर अब बच्चों की ज़िम्मेदारियाँ पूर्ण होते ही रिटायरमेंट ले लूँगा. फिर मेरा हर पल तुम्हारे लिए होगा. एक साथ दुनिया घूमेंगे.” लेकिन क्या वो दिन आ पाया? बच्चे विवाह योग्य हुए ही थे कि टूर पर जाते समय एक रेल-दुर्घटना ने उन्हें ज़िन्दगी से ही रिटायर कर दिया. अपनी उजड़ी दुनिया को तरुणा ने किस तरह सहेजा, यह सिर्फ वही जानती है.

एक बात थी कि उसे पैसे की कोई कमी नहीं आई. प्रोविडेंट फंड की रकम हाथ में आने के साथ ही बेटे देवेश को पति के स्थान पर नौकरी मिल गई. बच्चों की पढ़ाई पूरी होते ही उसने दोनों का विवाह कर दिया. बेटी अपने पति के साथ विदेश चली गई. इस तरह तरुणा अपनी सारी जिम्मेदारियों से मुक्त तो हो गई लेकिन असली समस्या तो अब सिर कुचलने के लिए मूसल लिए खड़ी थी.

नई बहू ने आते ही पति से स्पष्ट कह दिया कि वो इस तरह अकेले ज़िन्दगी नहीं काट सकती, उसे अपना जॉब बदलना पड़ेगा. तरुणा भी भला कैसे विरोध करती, जो सजा बेकसूर होते हुए भी उसने आजीवन भोगी, उसके लिए बहू को क्योंकर मज़बूर करे. बेटे ने वो नौकरी छोड़ दी और उसे मुम्बई की ही एक प्राइवेट कम्पनी में जॉब मिल गया. कुछ समय सुखपूर्वक निकल गया लेकिन बहू की गोद में जुडवाँ बेटे आने के बाद उसकी तनख्वाह से इस महानगर में गुज़ारा होना मुश्किल हो गया. उसने अनेक स्थानों पर अच्छी नौकरी के लिए आवेदन दे दिए. लेकिन बस इस दुबई वाले जॉब में ही तगड़ी तनख्वाह के साथ आवास सुविधा भी कम्पनी की तरफ से थी.

बेटा उसे विचारों के गहन सागर में गोते लगाने के लिए छोड़कर चला गया था. आज भी वो हमेशा की तरह आधी रात तक बंद कमरे में कंप्यूटर पर पति के ऑनलाइन आने का इंतजार करती रही. उसका मन यह मानने को तैयार ही नहीं होता था कि अब चेतन कभी ऑनलाइन नहीं आएँगे. उसके अरमानों की खिड़की पर कभी ग्रीन सिग्नल नहीं दिखेगा. लेकिन समय एक ऐसी मरहम है जिसमें गहरे से गहरा ज़ख्म भरने की शक्ति होती है. किसी के बिछुड़ने से जीवन सफ़र रुक नहीं जाता. उसे तो चलना ही है, अतः मन को समझाकर उसने पति के दिए हुए उपहार 'ऑनलाइन दुनिया' को ही जीने का सहारा बनाने का निर्णय किया.

काफी समय से लंबित पड़ी मित्रता के लिए भेजी हुई अर्जियों को एक एक करके जाँच-पड़ताल के बाद कन्फर्म करने के साथ ही फेसबुक के प्रलोभन स्वरूप दिखाए हुए नामों की भी जाँच पड़ताल करके मित्र-संख्या बढ़ाने लगी. अचानक ऐसे ही एक नाम पर उसकी नज़रें ठहर गईं. "मानव आहूजा..." दिमाग पर जोर लगाया तो उसके सामने लगभग ४५ वर्ष पहले का सुप्त बचपन अँगड़ाइयाँ लेता हुआ जाग उठा.

यह तो शायद उसका पड़ोसी और सहपाठी मित्र मन्नू है. उसने उसकी प्रोफाइल पर जाकर खोज की तो शहर का नाम भी उसके मायके का था. परिचय गहरा नहीं था लेकिन मायके का तो परिंदा भी प्यारा लगता है, और अब वो मुम्बई का ही निवासी है.

ooo ooo ooo ooo ooo

घर के निकट ही एक माध्यमिक विद्यालय में वे एक साथ पढ़े और बस्ती की गलियों में खेले थे. एक दिन हल्की बूँदा-बाँदी में घर के पास ही खाली मैदान में वो हाथ में छोटी सी लकड़ी की छड़ी लेकर यह कहते हुए गोल-गोल घूम रही थी -

“कोई मेरे पास न आए, अगर लगे तो मैं ना जानूँ...” और खेलते हुए मन्नू को छड़ी सिर पर लगी थी. वो जोर-जोर से रोने लगा था. माँ की पिटाई के डर से उसके तो छक्के ही छूट गए थे. कुछ बच्चे रोते हुए मन्नू को माँ के पास ले गए तो माँ ने उसे पकड़ कर लाने के लिए कहा था. वो जंगल की तरफ तेज़ी से भाग निकली थी, बच्चे उसे पकड़ नहीं सके और वापस चले गए थे. वो अँधेरा घिरने तक छिप-छिप कर घूमती रही, फिर यह सोचकर कि अब मामला शांत हो चुका होगा घर की तरफ चल दी थी. धीरे-धीरे ठिठक-ठिठक कर उड़का हुआ दरवाजा खोला था तो सामने मन्नू की माँ आँगन में ही रो-रो कर चुप हो चुके मन्नू के साथ तख्त पर बैठी दिखी थी. उसे देखते ही माँ छड़ी लेकर एक सख्त निगाह उसपर डालते हुए आगे बढ़ी थी, यह देखकर अचानक मन्नू बोल पड़ा था-

“चाची, तरु को मत मारो, गलती मेरी ही थी, मैं ही इसके पास तक चला गया था.”

सुनकर उसकी जान में जान आई थी. कृतज्ञता से मन्नू की तरफ देखा था और दोनों महिलाएँ हक्की बक्की रह गई थीं. उसके बाद वे बहुत अच्छे मित्र बन गए थे. आठवीं कक्षा तक आते-आते वे किशोर वय में प्रवेश कर चुके थे और उनमें एक दूसरे के प्रति

स्वाभाविक आकर्षण महसूस होने लगा था. परीक्षा के बाद वो विद्यालय तो छूट गया, अब आगे की पढ़ाई के लिए सोचना था. गर्मी की छुट्टी लगते ही वो नानी के पास चली गई थी, जब वापस आई तो पता चला था कि मन्नू का परिवार वो मोहल्ला छोड़कर कहीं और चला गया है. सुनकर तरुणा को लगा था जैसे कोई अपना सा बिछुड़ गया हो, लेकिन वो किसी से पूछ भी नहीं सकती थी, क्योंकि घर के संस्कार इसकी इज़ाज़त नहीं देते थे. इस तरह दो दिलों के बीच प्रेम का अंकुर फूटने से पहले ही मुरझा गया. आगे की पढ़ाई के लिए उसका दाखिला कन्या पाठशाला में करवा दिया गया था. बस, उसके बाद वे कभी नहीं मिले थे.

ooo ooo ooo ooo ooo ooo

पूरी तसल्ली के लिए उसने धड़कते दिल से उसे मित्रता की अर्जी भेज दी. फिर याद आया कि उसका फेसबुक खाता तो ससुराल के नए नाम 'अनुसूया चेतन' से बना हुआ है, पति ने ही इस नाम से खाता बनवाया था. बचपन का नाम तो तरुणा है...फिर उसने मन्नू की वाल पर जाकर अपने पुराने नाम के हस्ताक्षर के साथ मित्रता स्वीकार करने का अनुरोध करते हुए सन्देश भेजा. थोड़ी ही देर में अर्जी की स्वीकृति के साथ ही वो चैट-बॉक्स पर ग्रीन सिग्नल के साथ उपस्थित था.

"यह सचमुच तुम ही हो तरु...?"

‘‘हाँ मन्नू...मैं ही हूँ”

“कितना घोर आश्चर्य है, इतने साल के बाद सोचा भी न था कि हमारी मुलाकात इस तरह होगी.”

‘‘सचमुच मन्नू, यह ऑनलाइन दुनिया का ही चमत्कार है.’’

बातें करते हुए उनको यह भी भान न रहा कि अब वे पचपन की वय को छू रहे हैं. वे एक दूसरे को बचपन के नाम से ही संबोधित कर रहे थे. दोनों में खूब बातें हुईं, मोबाइल नंबर का आदान-प्रदान हुआ और तरुणा के मन में पुनः नई जिजीविषा जागने लगी.

औपचारिक बातचीत के बाद मन्नू ने तरुणा से मिलने की इच्छा प्रगट की. यों तो घर में सबका अपना मित्र वर्ग था और सोसायटी में किसी के आने जाने या मिलने जुलने पर कोई रोक-टोक नहीं थी लेकिन सबके सामने वे ठीक से बातचीत नहीं कर पाते तो तरुणा ने तुरंत मन्नू को दो दिन अकेले होने की बात बताकर अपने घर का पता दिया और दूसरे दिन ही आने के लिए कह दिया.

अगले ही दिन मन्नू गुलाब के रंगबिरंगे सुन्दर फूलों के गुलदस्ते सहित उसके सामने था.

तरुणा ने उसका स्वागत करके अन्दर बुलाकर बिठाया. दोनों ही एक दूसरे के बचपन का पचपन में रूपांतरण देखकर रोमांचित हो रहे थे. फिर चाय नाश्ते के साथ ही बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ.

तरुणा ने दिल खोलकर अपनी सारी कहानी मन्नू को विस्तार से सुनाई. बेटे के साथ कल ही हुई पूरी बातचीत भी उसके साथ साझा करके मन हल्का किया. फिर मन्नू से मुखातिब होकर पूछने लगी -

''लेकिन मन्नू, तुम मुम्बई कैसे पहुँचे?''

"वो मोहल्ला छोड़ने के बाद हम उसी शहर में नई कॉलोनी में आ गए थे. तुम्हें बताने का बहुत मन था बहुत याद किया था तुम्हें पर मेरे बस में कुछ नहीं था. पढ़ाई पूरी होने के बाद मेरी नियुक्ति उसी शहर में व्याख्याता के पद पर हुई थी, शादी के बाद दो बेटे हुए. उन्हें खूब पढ़ाया लिखाया, दोनों ही विदेश में नौकरी लगने से विवाह करके वहीं बस गए. हम पति-पत्नी सुखपूर्वक रह रहे थे, बेटे भी आना-जाना करते ही थे, लेकिन दो वर्ष पहले पत्नी की मृत्यु हो जाने से मैं अकेला हो गया. बेटों ने साथ चलकर रहने का आग्रह किया लेकिन मैंने इनकार कर दिया तो उन्होंने शहर का मकान बेचकर मेरे रहने की व्यवस्था अपने आने-जाने की सुविधा के कारण मुम्बई में कर दी. अब मैं अकेले ही सानंद अपने दिन व्यतीत कर रहा हूँ. तुम चाहो तो कल मेरे साथ चलकर मेरा घर देख सकती हो".

तरुणा की स्वीकृति पाकर दूसरे दिन मन्नू जल्दी ही आ गया और टैक्सी तय करके अपने निवास का पता बताया. थोड़ी ही देर में टैक्सी एक एकांत स्थल पर प्रकृति की गोद में बसे एक भवन के सामने खड़ी थी. भवन का नामपट्ट और उसके साथ लिखी हुई इबारत पढ़ते ही तरुणा की आँखें आश्चर्य से फ़ैल गईं.

‘‘अरे! यह तो वृद्धाश्रम है मन्नू, क्या तुम यहीं रहते हो?

“हाँ तरु! लेकिन यह स्थान इतना बुरा नहीं, जितना तुम सोचती हो...यह स्थान मैंने स्वयं चुना है.”

‘‘वाकई यह स्थान बहुत सुन्दर है मन्नू, लेकिन कोई भी स्थान चाहे कितना भी सुन्दर क्यों न हो, अपनों की महक बिना के बेजान ही नज़र आता है.’’

“यह तो मेरे भी मन की बात हुई, इज़ाज़त हो तो मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ तरु...”

‘‘अरे कहो न, इसमें इज़ाज़त वाली बात कहाँ से आ गई?’’

“तरु, आज हम उम्र के एक ही मोड़ पर खड़े हैं, साथ ही दोनों ही अकेलेपन की समस्या से जूझ रहे हैं, यही नहीं हम पूर्व परिचित मित्र भी हैं, और एक दूसरे को

अच्छी तरह जानते-पहचानते हैं. बचपन में अचानक जुदा न हुए होते तो आज हमारी कहानी कुछ और ही होती...कल से ऑनलाइन मुलाकात होते ही मैं मन ही मन स्वयं को तुमसे जुड़ा हुआ महसूस कर रहा हूँ, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम विवाह करके यहाँ एक साथ रहें और बचपन के अपरिपक्व प्रेम को पुनः पल्लवित करके एक दूसरे का सुख-दुःख साझा करते हुए जीवन व्यतीत करें?"

"तुमसे ऑनलाइन मुलाकात ने मुझे एक बहुत बड़ी समस्या से निजात दिला दी है मन्नू, लेकिन अभी तो मैं पुनः तुम्हारी पड़ोसन बनना चाहती हूँ, बाकी सब बातें समय ही तय करेगा. मैं बेटे को यह तो नहीं कहूँगी कि मुझे कोई अपना-सा मिल गया है लेकिन कल उसके आते ही मैं उसकी अर्थाभाव के ट्राफिक में फँस चुकी ज़िंदगी की गाड़ी को ग्रीन सिग्नल दिखा दूँगी."

ooo ooo ooo ooo

उस रात का डर

आशिमा बिटिया के विवाह के साथ ही अमिता के जीवन का एक बहुत बड़ा उद्देश्य तो पूर्ण हो गया लेकिन पहाड़ जैसे लंबे एकाकी जीवन की शुरुवात भी। भविष्य की चिंता ने उसके मन का चैन चुरा लिया था और विचारों-कुविचारों ने अतिक्रमण करके अपना जाल बिछा दिया था। उसे अब जीने की कोई राह नहीं सूझ रही थी।

एकाकीपन और अतीत का आपस में बहुत गहरा रिश्ता होता है। एकाकीपन कभी अकेला रहना पसंद नहीं करता, झट से अपने मित्र अतीत को संदेश पहुँचा देता है, अतीत तो इंतज़ार में ही रहता है कि कब इंसान एकाकी हो और वो आकर उसके मनोमस्तिष्क पर अपना आसन जमा ले। यही अमिता के साथ भी होना ही था और हुआ। वह जैसे ही नींद को बुलाती, अतीत की किताब के पन्ने विचारों के झोंकों से फड़फड़ाने लगते और वह खुले-अधखुले उन पृष्ठों के कुछ धुँधले कुछ स्पष्ट शब्दों के भँवर-जाल में डूबती चली गई।

वह फागुनी पूनम की रात थी। होलिका दहन की तैयारियाँ पूरे गाँव में ज़ोरों पर थीं। हर मुहल्ले की हर गली में गाड़े हुए डंडों के इर्द गिर्द सूखे पत्ते, गोबर के उपले और पेड़-पौधों की टहनियों के कहीं छोटे तो कहीं बड़े से गुंबज नज़र आ रहे थे। शाम का झुटपुटा, शीत और ग्रीष्म ऋतुएँ आपस में गले मिल रही थीं। एक की विदाई और दूसरी का स्वागत होना था। एक ने अपनी फैली हुई चादर में शीत, हिम, और कोहरा

समेटकर गठरी बाँध ली थी तो दूसरी अपनी शुष्क, गरम हवाओं की पोटली खोलने को आतुर थी।

गाँवों में उत्सव का माहौल कुछ अलग ही रंग में रंगा हुआ होता है। जोश और उत्साह हर चेहरे पर पूरे दम-खम के साथ परिलक्षित होने लगता है। चूँकि अमिता के पति वैभव पर्व प्रथाओं को पल्लवित करने में अग्रणी भूमिका निभाते थे, अतः गली-मुहल्ले के युवाओं को होलिका-दहन की सामग्री और चंदा जुटाने से लेकर रतजगे के लिए तैयार करना उसकी ज़िम्मेदारी होती थी।

महाराष्ट्र के एक शहर की निवासी अमिता का विवाह नजदीक ही एक गाँव में हुआ था। उसकी ससुराल में १२ सदस्यों का साझा परिवार था। संपन्नता के साथ ही पूर्ण सुख शांति रहती थी, दिन-भर वो अपनी जेठानी के साथ पर्व की परंपरा के अनुरूप पकवान बनाने और पूजा की तैयारियों में लगी रही, वैभव अपनी १० वर्षीय बेटी आशिमा के लिए रंग गुलाल और पिचकारी ले के साथ ही सुंदर सफ़ेद रंग का लहँगा-चोली ले आया था।

शाम गहराते ही घर के सभी सदस्य बाहर के दालान में होलिका-दहन के नज़ारे को नज़रों में उतारने के लिए एकत्रित हो गए।

गीत-संगीत, पकवानों का भोग और पूजन चलता रहा, फिर मुहूर्त देखकर देर रात होली में आग लगा दी गई। सब लोग आसपास ही बिखर गए। अचानक वैभव का एक मित्र जो हमेशा शुभ कार्यों में उसके साथ रहा करता था, अपनी मोटर साइकिल से तेज़ी से गली में आता दिखाई दिया। सब इधर उधर होकर जगह बनाने लगे लेकिन यह क्या! ज्यों ही मुसकुराते हुए वैभव ने उधर दृष्टि फेरी, मित्र का ध्यान चूक गया और गाड़ी ने सीधे उसे ज़ोर से टक्कर मार दी। वैभव उछलकर एक तरफ लुढ़क गया, मित्र भी बचाव के चक्कर में गाड़ी सहित गली में ही दूर तक रगड़ खाता हुआ चला गया। घटनास्थल पर कोहराम मच गया। आनन फानन दोनों को एंबुलेंस बुलाकर अस्पताल पहुँचाया गया, लेकिन अत्यधिक रक्त स्राव के कारण आधी रात तक दोनों मित्रों ने दम तोड़ दिया। घर में रोना पीटना शुरू हो गया, अमिता को तो जैसे लकवा मार गया था, सदमे से बेहोश होकर वहीं गिर पड़ी। पूनम की वह रात उसके लिए अमावस में बदल चुकी थी।

काफी समय बाद वो सामान्य स्थिति में आई तो उसके सामने अपने साथ ही बेटी का भविष्य भी एक सवाल बनकर खड़ा था। ससुराल में कोई कमी न थी लेकिन वो जीविका के लिए किसी पर निर्भर रहना नहीं चाहती थी अतः बहुत सोच विचार के बाद उसने माँ-पिता के पास शहर जाकर रहने का निर्णय लिया। उसकी कच्ची उम्र को देखते हुए किसी ने उसका विरोध नहीं किया। मायके का घर बड़ा था वहाँ बड़े भाई ने उसके लिए एक हिस्सा खाली करके गृहस्थी के साधन जुटा दिये। वो पढ़ी लिखी तो थी ही, थोड़े से प्रयास के बाद ही उसकी एक प्राइवेट स्कूल में शिक्षिका के पद पर

नियुक्ति हो गई। बेटी का दाखिला भी उसने अच्छे स्कूल में करवा दिया। उसकी दूसरी शादी के भी अनेक प्रस्ताव आए लेकिन अमिता ने मातृत्व पर अपनी इच्छाओं को हावी न होने दिया।

इस तरह समय-चक्र चलता रहा, आशिमा ने ग्रेजुएशन पूरा करके जॉब के लिए आवेदन कर दिया था, शीघ्र ही उसकी नौकरी मुंबई की एक अच्छी कंपनी में लग गई। अमिता का ससुराल में भी आना-जाना लगा रहता था। वहाँ अब जेठ-जिठानी का ही परिवार रह गया था। ननदों की शादियाँ हो चुकी थीं, उसके सास ससुर एक-एक करके इहलोक वासी हो चुके थे। वे अपनी आधी संपत्ति अमिता के नाम कर गए थे। अमिता आशिमा को मुंबई अकेली नहीं भेजना चाहती थी और न खुद ही उसके बिना रह सकती थी, अतः उसने वहीं शिफ्ट होने का मन बनाकर अपने हिस्से की संपत्ति से छोटा सा एक कमरे का फ्लैट खरीद लिया। माँ बेटी के लिए यह काफी था। आशिमा को लेने और छोड़ने के लिए कंपनी की गाड़ी आ जाती थी। अवकाश के दिनों में माँ बेटी एक साथ बाजार करके आती थीं। इस तरह उसका एक नई दुनिया में प्रवेश हुआ।

यहाँ आए छह महीने बीत चुके थे, उसे अब आशिमा के विवाह की चिंता थी। लेकिन शीघ्र ही बेटी ने माँ को इस चिंता से यह कहकर मुक्ति दिला दी कि वो अपने ऑफिस के ही एक सहकर्मी आशीष से विवाह करना चाहती है, वे दोनों एक दूसरे को पसंद करते हैं। आशीष ने भी अपने माँ पिता को आशिमा के बारे में बता दिया है

और रविवार को वो अपने माँ-पिता के साथ यहाँ आकर सारी बातें तय कर लेंगे। इस प्रकार बेटी का रिश्ता तय हो गया, और शीघ्र ही उसका विवाह भी सम्पन्न हो गया।

मुंबई आने के साथ ही अमिता की नौकरी छूट गई थी और अब यहाँ महानगर में नई नौकरी की उम्मीद भी नहीं थी। कभी कभी बेटी-दामाद मिलने आ जाते, लेकिन खाली समय में खाली दीवारें उसे काटने को दौड़तीं, अतः उसने कर्तव्यों पर कुर्बान हो चुकी कलम को फिर से थाम लिया। बेटी ने माँ के अकेलेपन को भाँपकर उसे उसे कंप्यूटर सीखने के लिए प्रेरित किया और एक अच्छा सा लैपटाप दिला दिया। समय निकालकर वो माँ के पास आ जाती और उसे इन्टरनेट का प्रयोग सिखाती। अब अंतर्जाल ही अमिता का अकेलेपन का साथी था, लिखना और पढ़ना उसकी दिनचर्या का अंग बन गया। कुछ ही दिनों में आशिमा ने माँ को इन्टरनेट का प्रयोग भली भाँति सिखा दिया, फिर उसे फेसबुक पर जोड़ दिया। इस नई दुनिया से अमिता इतनी रोमांचित और उत्साहित हुई कि अब उसे अकेलेपन का बिलकुल भी आभास न होता। वो अपनी कविताओं को फेसबुक पर साझा करने लगी। शीघ्र ही लोग उसका लेखन पसंद करने लगे और लगातार उसके मित्र बनते गए। कंप्यूटर ऑन करते ही बातूनी खिड़की झट से खुल जाती फिर उसे चैन ही न लेने देती। अब उसकी रेंगती हुई ज़िंदगी ने घुटनों से घिसटना शुरू कर दिया फिर पाँव-पाँव चलते हुए दौड़ लगानी शुरू कर दी।

धीरे-धीरे उसे गोष्ठियों में आने के लिए आमंत्रित किया जाने लगा, लेकिन उसे कोई वाहन चलाना नहीं आता था और सीखने में अब रुचि भी नहीं रह गई थी, तो बेटी ने

इस समस्या का भी समाधान तुरंत कर दिया। वो उसी सोसाइटी में रहते हुए जिस टैक्सी से माँ के साथ आती जाती थी, उसके ड्राइवर से परिचय करवाकर मोबाइल नंबर नाम पता सब डायरी में लिखवा दिया।

६५ वर्षीय ड्राइवर मोहनलाल वर्मा, जिसे आशिमा दादा कहा करती थी, एक निहायत नेक और संभ्रांत इंसान थे, सुबह से शाम तक वे टैक्सी चलाते फिर शाम को उनका बेटा पिता को घर भेजकर देर रात तक जुटा रहता। अमिता को अब गोष्ठियों में जाने में कोई परेशानी न होती। वह पहले ही वर्मा जी को समय बताकर टैक्सी आने जाने के लिए बुक कर लेती। अक्सर जाने का समय शाम का होता तो उनका बेटा ही उसे लेने और छोड़ने का कार्य करता। काल करते ही टैक्सी गेट पर उपस्थित हो जाती। वर्मा जी का अधेड़ उम्र का बेटा सभ्य और शालीन युवक था। अमिता जब तक गोष्ठी में रहती वो आसपास की सवारियाँ ही लेता क्योंकि वो किसी भी समय वापस चलने का मन बना लेती थी। काल करते ही वो कहीं भी होता, १० मिनिट में उपस्थित हो जाता था।

फेसबुक से जुडने के बाद अमिता की पहचान को एक नया आकाश मिल गया। अब उसका बचा हुआ सारा समय लिखने के अलावा मित्रों से बातें करते हुए कट जाता। मित्रों का चुनाव फेसबुक पर वो बहुत सावधानी से करती थी। सबसे पहले अपनी रचनाओं पर उनकी उपस्थिति और टिप्पणियाँ देखती फिर अपनी सूची में शामिल करती। इस तरह मित्र-अर्जियों की सूची लंबी हो गई थी।

आज अमिता को किसी गोष्ठी में शामिल नहीं होना था अतः शाम को टहलने और भोजन से निवृत्त होकर जल्दी ही फेसबुक पर डट गई। किसी बंदे ने फेसबुक पर संदेश भेजकर मित्रता स्वीकार करने का आग्रह किया था। अमिता ने अपनी रचनाओं में उसका नाम ढूँढना शुरू किया तो देखा कि वो उसकी हर रचना पर टिप्पणी सहित उपस्थित था, जाने कैसे उसकी अर्जी अमिता की नज़र से चूक गई थी। उसने तुरंत अर्जी स्वीकृत कर दी। उसकी प्रोफाइल पर परिचय में नाम 'कुमार मयंक', निवासी 'मुंबई' और जन्म तिथि के अलावा कुछ नहीं था। स्वीकृति मिलते ही चैट की खिड़की अविलंब खुल गई और नमस्कार के साथ ही वार्ता शुरू हो गई -

"अमिता जी, आपकी कविताएँ शानदार होती हैं"

"सराहना के लिए बहुत धन्यवाद''

"मैं अक्सर आपको गोष्ठियों में सुनता रहता हूँ"

"अच्छा! लेकिन आपसे कभी मुलाक़ात तो नहीं हुई''

"जी बस मौके के इंतज़ार में था"

फिर तो नित्य बातों का सिलसिला चल निकला। अमिता का समय अब एक अच्छा मित्र और प्रशंसक मिल जाने से अच्छी तरह व्यतीत होने लगा। मनपटल पर अंकित शून्य का वृत्त क्रमशः छोटा होते होते एक बिन्दु में परिवर्तित हो गया था। उसको समझ में में नहीं आ रहा था कि वो क्यों इस तरह चुंबक की भाँति मयंक की ओर आकर्षित होती जा रही है। जन्म तिथि के अनुसार उसकी आयु ४५-५० के बीच की है, बाल बच्चेदार होगा, उससे दूरी बनाना ही बेहतर है, सोचकर उसने बातचीत का सिलसिला कुछ कम कर दिया। अचानक एक दिन चैट पर बातों-बातों में अमित बोला-

“अमिता जी, बुरा न मानें तो एक बात पूछूँ”

“कहिए’’

“पहले वादा कीजिये कि आप बुरा नहीं मानेंगी”

“नहीं बाबा, आप जैसे नेक मित्र की बातों का क्या बुरा मानना!’’

“मैं आपके बारे में विस्तार से जानना चाहता हूँ”

अमिता मौन हो गई, कुछ देर उत्तर न पाकर मयंक ने कहा -

“कोई बात नहीं आप न बताना चाहें तो...”

“ऐसी बात नहीं है, मैं दरअसल यहाँ बेटी दामाद के साथ रहती हूँ। अमिता ने अकेले रहने की बात बताना उचित न समझकर कहा। पति की एक दुर्घटना में मृत्यु हो चुकी है। मेरी एक ही बेटी है। लेकिन आप यह क्यों जानना चाहते हैं?

“देखिये मैंने आपको हमेशा अकेले ही गोष्ठियों में आते जाते देखा है इसलिए पूछ लिया। अमिता जी, मैं आपको चाहने लगा हूँ। आपसे शादी करना चाहता हूँ। मेरी पत्नी की ८ साल पहले उसकी पहली डिलिवरी में ही बच्चे को जन्म देते समय मृत्यु हो गई, बच्चे को भी नहीं बचाया जा सका। मैं अपने माँ-पिता के साथ ही रहता हूँ। एक प्राइवेट कंपनी में सेवारत हूँ।”

“लेकिन मैंने तो इस बारे में कभी सोचा ही नहीं’’

“क्या हम एक बार मिलकर बात कर सकते हैं?”

अमिता के मन में व्दंद छिड़ गया। उसकी अभी उम्र ही क्या थी और अकेले ज़िंदगी गुज़ारना भी कितना दुष्कर है? न चाहते हुए भी वो मयंक की ओर आकर्षित होती चली गई। फिर से सुनहरे भविष्य के सपने आँखों में तैरने लगे। लेकिन बिना सब जाने मिले इतना बड़ा निर्णय कैसे ले ले। बेटी दामाद क्या सोचेंगे? मयंक में उसे कोई

बुराई नहीं दिखी। आखिर उसने मिलकर निर्णय करने का मन बना लिया। मयंक ने समुद्र-बीच पर पूर्णिमा के दिन मिलने का कार्यक्रम बनाया। यह फागुन का महीना था और इस दिन तो वह बाहर झाँकती भी न थी और न ही किसी से मिलती। पति के बाद उसने कभी होली नहीं खेली। इस रात का कहर वो कैसे भुला सकती थी। इस दिन वो अपने कटु अतीत की यादों के साथ कमरे में कैद हो जाती थी। एकदम बोली-

"नहीं, होली निकल जाए फिर किसी और दिन के लिए विचार करेंगे''

"लेकिन मेरा तबादला हो चुका है अमिता, और होली के बाद मुझे यहाँ से जाना होगा, मैं इसीलिए तुमसे बात कर लेना चाहता हूँ"।

अमिता सारी बातें मयंक को नहीं बताना चाहती थी और न ही बेटी को अभी से इस बारे में, अतः मन को मजबूत करके सहमति दे दी।

उस दिन उसने यह सोचकर कि आने जाने में जाने कितना समय लग जाए, वर्मा जी को फोन करके टैक्सी शाम को अनिश्चित समय के लिए बुक कर ली। नियत समय पर वो समुद्र बीच पर मयंक के बताए प्वाइंट पर पहुँच गई। उसने मयंक को अपने पहुँचने की सूचना देने के लिए काल करना चाहा लेकिन उसका मोबाइल ऑफ होने का संकेत आ रहा था। उसने ड्राइवर को हिदायत दी कि टैक्सी पार्क करके वो आसपास ही रहे। खुद वहीं टहलने लगी कुछ देर में मयंक ने फोन पर बताया कि उसे ट्राफिक के

कारण घर पहुँचने में देर हो गई है और वहाँ आने में एक घंटा और लग जाएगा। अमिता के मन में इस चाँदनी रात का डर बुरी तरह समाया हुआ था, वो तो रात घिरने से पहले वापस जाना तय करके आई थी लेकिन अब इंतज़ार करने के अलावा कोई चारा नहीं था। ड्राइवर भी टैक्सी पार्क करके चला गया था, आखिर आधा घंटा और बीतने पर मयंक ने पहुँचने का संकेत किया और एक टैक्सी उसके पास ही आकर रुक गई। वह उत्सुकता से उस तरफ देखने लगी, लेकिन यह क्या? टैक्सी से उसके बेटी-दामाद उतरते नज़र आए। अमिता को काटो तो खून नहीं। हक्की बक्की होकर ताकने लगी। फिर कुछ सँभलकर बोली -

“अरे, आप लोग इधर!”

“हाँ माँ, हमें कुमार मयंक उर्फ आपके ड्राइवर मयंक वर्मा ने ही बुलाया है।

विस्मित सी अमिता ने देखा, ड्राइवर मुस्कुराते हुए वहीं चला आ रहा था। अमिता के ज़ेहन में बीते दिनों के सारे घटनाक्रम की कड़ियों ने जुड़कर एक जंजीर का आकार ले लिया था, तभी आशिमा कहती गई -

“माँ, मयंक अंकल ने हमें कुछ दिन पहले ही सब कुछ बता दिया था कि आप दोनों एक दूसरे को चाहते हैं और उनको आपसे शादी करने के लिए हमारी इजाज़त चाहिए। मिलने के लिए इस आज का दिन मैंने ही तय किया था ताकि आपके मन से उस

रात का डर हमेशा के लिए निकल जाए। मेरी प्यारी माँ! सृष्टि के नियम अटल हैं। जीवन-मृत्यु, सुख-दुख, मिलना-बिछड़ना सब पूर्व नियोजित है। हर रात के बाद सुबह अवश्य आती है और हर अमावस के बाद पूनम का आना भी तय है। आप दोनों को नया जीवन शुरू करने के लिए हमारी अनंत शुभकामनाएँ...'' कहते हुए आशिमा अपने बैग से गुलाल की डिबिया निकालकर बोली -

"माँ, यह वही डिबिया है जो पिताजी ने उस होलिका-दहन के दिन मुझे आपको मलने के लिए दिलाई थी, आपको गीले रंगों से एलर्जी थी न... उसके बाद आपने कभी होली नहीं खेली और मैंने भी मन ही मन प्रण कर लिया था कि आपको गुलाल मले बिना कभी होली नहीं खेलूँगी। माँ, मेरी ससुराल में यह पहली होली है और मैं बरसों बाद आपको गुलाल मलने के बाद ही अपने पति के साथ होली खेलूँगी...'' कहते हुए सबसे पहले आशिमा ने, फिर दामाद ने और अंत में मयंक ने बारी-बारी अमिता के गालों पर गुलाल मला, और...उसके लाज से लाल हुए चेहरे को गुलाल ने अपने आवरण में छिपा लिया।

ooo ooo ooo ooo

आसमान भी रोता होगा

सुविधा नन्हें सुजान को गोद में लिए कमरे की खिड़की से एकटक आसमान को निहार रही थी कि अचानक एक तारा टूटकर शून्य में विलीन हो गया. घबराकर सुविधा ने बेटे को अपनी बाँहों में भींच लिया और उसे बेतहाशा चूमने लगी.

माँ के अचानक फोन करके बताने पर कि उसके पिताजी की तबियत अचानक बिगड़ गई है और वो अस्पताल में भर्ती हैं, तो अपने कार्यालय से एक सप्ताह की छुट्टी लेकर सुविधा इंदौर अपने पिता को देखने चली आई थी. दो दिन में पिताजी की तबियत में तो सुधार था लेकिन सुजान को कल से हल्का सा बुखार आ गया था. एक तो 'बेबी सिटिंग सेंटर' भेजने के बाद वो कुछ कमज़ोर भी हो गया है, ऊपर से बुखार...अतः माँ के कहने पर वो सुजान को शिशु-विशेषज्ञ के पास ले गई. डॉक्टर ने बच्चे की नब्ज़ देखकर सुविधा से पूछा-

''बच्चे को कब से बुखार है?''

"कल से ही सर!"

''पहले भी इसे बुखार आता रहता है क्या... और इसके अलावा कोई अन्य समस्या तो नहीं इसके साथ?''

“नहीं, बुखार तो कभी नहीं आता सर, लेकिन जब छुट्टी के दो दिन घर पर रहता है तो बहुत अनमना सा रहता है और दिन में ठीक से सोता भी नहीं है. मैं नौकरीपेशा हूँ और अपने पति के साथ मुंबई की एक सोसायटी में रहती हूँ. सुजान सुबह नौ बजे से शाम आठ बजे तक ‘बेबी केयर सेंटर’ में रहता है” सुविधा ने अपने और सुजान के बारे में पूरी जानकारी देते हुए कहा.

‘‘अच्छा, इसे बेबी सेंटर में रहते हुए कितना समय हो गया है?’’

“लगभग एक साल हो चुका है सर, यह एक साल का था जब इसे हमने वहाँ भरती किया था. उससे पहले हम इंदौर में ही रहते थे और सुजान की देखभाल दादा-दादी ही करते थे”.

‘‘क्या यह जन्म से ही कमज़ोर है?’’

“नहीं सर, जब से इसे शिशु सेंटर भेजना शुरू किया है तब से धीरे धीरे यह कमज़ोर होता गया है. लेकिन हमने इसपर गौर इसलिए नहीं किया कि बढ़ते हुए बच्चों के लिए यह स्वाभाविक क्रिया होगी”.

‘‘लेकिन उम्र के हिसाब से इसका सही विकास नहीं हो रहा है, आपने कभी ‘बेबी केयर सेंटर’ जाकर इसकी दिनचर्या पर दृष्टिपात किया है?’’

“सर, सेंटर की संचालक मेरी कालेज के दिनों की विश्वसनीय सहेली तारा है, अतः मैंने शुरुवात में सेंटर की गतिविधियों के बारे में जानकारी लेने के बाद फिर कभी इसकी आवश्यकता नहीं समझी. सेंटर में एक से तीन साल तक के बच्चे ही हैं, उनकी प्रति सप्ताह उनके द्वारा तैनात शिशु रोग विशेषज्ञ से जाँच करवाई जाती है, लेकिन वहाँ के कुछ नियम हैं. बच्चों से हमें दिन में मिलने नहीं दिया जाता क्योंकि दिन में उन्हें स्नान के बाद दूध-भोजन वगैरह देकर सुला दिया जाता है और हाँ... जब भी मुझे कहीं जाना होता है तो मैं दिन में ही सुजान को लेने चली जाती हूँ पर यह मेरी गोद में सोता रहता है और शाम को ही जागता है.’’

‘‘बस, यहीं कुछ गड़बड़ लगती है...जब बच्चा सेंटर में दोपहर से शाम तक गहरी नींद सोता रहता है तो छुट्टी में घर पर दिन में क्यों नहीं सो पाता?...बच्चे की वहाँ के डॉक्टर की रिपोर्ट है आपके पास?’’

“यहाँ साथ में तो नहीं ले आई, उसमें सुजान को पूरी तरह स्वस्थ करार दिया हुआ है, लेकिन इन सवालों का बच्चे के बुखार से क्या सम्बन्ध है सर”?

‘‘मुझे शंका है कि बच्चे को भोजन में कोई नशे की चीज़ मिलाकर सुला दिया जाता होगा, इसी कारण घर पर वो सो नहीं पाता होगा, इसकी शारीरिक कमजोरी का कारण भी यही हो सकता है. अभी तो मैं इसका बुखार उतरने के लिए दो दिन की दवाई दे

देता हूँ लेकिन बच्चे की पूरी जाँच यानी इसके रक्त-परीक्षण के बाद ही सही निर्णय पर पहुँचा जा सकता है.''

सुविधा तड़पकर बोली -

“सर, आप इसके रक्त का नमूना लेकर अच्छी तरह पूरी जाँच करके रिपोर्ट बना दीजिये, अगर आपकी शंका सही निकली तो मैं सेंटर पर तो कानूनी कार्रवाही करूँगी और अब सुजान को कभी अपने से दूर नहीं करूँगी”.

सुविधा की अनुमति पाकर डॉक्टर ने सुजान के रक्त का नमूना लिया और अगले दिन रिपोर्ट ले जाने के लिए कहा.

सुविधा शंकाओं के भँवर में डूबती उतराती हुई घर पहुँची.

जैसे तैसे वो दिन गुज़र गया, दवाई से सुजान का बुखार कम हो गया तो उसके मन को कुछ शांति मिली और वो अगले दिन रिपोर्ट लेने डॉक्टर के पास चली गई. डॉक्टर का शक सही था. सुजान के रक्त में नशे की दवा की मात्रा पाई गई थी.

रिपोर्ट देखते ही सुविधा फफककर रो पड़ी. इसका मतलब सेंटर का डॉक्टर भी उनसे मिला हुआ है.

उसे याद आ गया कि जब भी वो दिन में सेंटर से सुजान को लेने जाती थी तो तारा हमेशा अपने दो वर्षीय बच्चे के साथ खेलती हुई मिलती थी जबकि बाकी बच्चे गहरी नींद में सोए रहते थे. एक बार उसने पूछा भी था -

“तारा, तुम अपने बच्चे को दिन में क्यों नहीं सुलाती”? तो तारा हँसकर कहती-

‘‘सुविधा डियर, मुझे यही तो समय मिलता है न अपने बच्चे के साथ खेलने का...इसे मैं शाम को बाकी बच्चों के उठने के बाद सुलाती हूँ ताकि सबकी देखभाल ठीक से हो सके...’’

डॉक्टर सुविधा को रोते देखकर उसे धैर्य बँधाते हुए बोला -

‘‘देखिये, आपको विवेक से काम लेना चाहिए, अच्छा हुआ आप सही समय पर यहाँ पहुँच गईं. मैं १५ दिन की दवाइयाँ दे देता हूँ आपका बच्चा बिलकुल स्वस्थ हो जाएगा. लेकिन १५ दिन बाद फिर निरीक्षण करवाने यहाँ आना पड़ेगा और आगे भी आपको बच्चे की पूरी सावधानी से देखभाल करनी होगी.’’

सुविधा दवाइयाँ लेकर भारी मन से घर पहुँची. माँ के पूछने पर सारी बात बताई लेकिन सुधीर को यह सब फोन पर कैसे बताए? वो तो सारा दोष यह कहकर उसी के माथे मढ़ देगा कि कि मैंने पहले ही कहा था कि बच्चे को ‘बेबी केयर सेंटर’ भेजने का

रिस्क मत लो. सोचते-सोचते उसका सिर भारी होने लगा. उसे इस समय सुधीर के साथ की आवश्यकता होने लगी. माँ के बहुत कहने पर दो चार कौर खाना खाया फिर सुजान को दवा देकर उसके साथ ही लेट गई.

विचार थमने का नाम नहीं ले रहे थे और समाधान सूझ नहीं रहा था. सच ही तो कहा था सुधीर ने, तीन साल पहले की ही तो बात है, कितनी सुखी गृहस्थी थी उसकी...

सुधीर और वो इंदौर के एक ही कार्यालय में जॉब करते थे. वहीँ दोनों का एक दूसरे से परिचय हुआ और धीरे-धीरे परिचय प्यार में बदल गया. फिर उनके विवाह में एक ही जाति के होने के कारण कोई बाधा नहीं आई और वो सुधीर के साथ सात फेरे लेकर ससुराल आ गई. सास-ससुर बहुत परिष्कृत विचारों और सरल स्वभाव के थे. एक साल के अन्दर ही वो एक बेटे की माँ बन गई. सुजान सारी सुख-सुविधाओं के बीच दादा-दादी के साए में प्यार दुलार के साथ पलने लगा. अभी वो एक साल का ही हुआ था कि अचानक सुधीर का तबादला कंपनी ने मुम्बई में कर दिया तो सुविधा ने भी आवेदन करके अपना तबादला मुम्बई करवा लिया. तय हुआ कि आवास की व्यवस्था होते ही माँ-पिता को भी मुम्बई बुला लेंगे. कुछ दिन कंपनी व्दारा बुक किये हुए होटल में गुज़ारने के बाद उन्होंने एक उच्चस्तरीय सोसायटी में फ़्लैट किराए पर ले लिया और व्यवस्थित होते ही सुधीर माँ-पिता को लेने गया था लेकिन उन्होंने उसे सदैव

सुखी रहने का आशीर्वाद देकर अपना घर और शहर छोड़कर मुम्बई जाने से साफ़ इनकार कर दिया था.

सुधीर ने वापस आकर सारी बात बताते हुए कहा था -

"सुविधा, सुजान को नौकरी के साथ-साथ कैसे सँभाल पाओगी...उचित यही होगा कि तुम नौकरी छोड़ दो. वैसे भी मेरी आय हमारे परिवार के लिए काफी है. हम आराम से अच्छी ज़िन्दगी गुज़ार सकते हैं..."

"यह तुम क्या कह रहे हो सुधीर, मैंने दिन रात एक करके यह नौकरी हासिल की है, अब वो ज़माना नहीं रहा कि पत्नी पति की गुलाम बनकर और हर तरह के ज़ुल्म सहकर घर में पड़ी रहे."

"देखो सुविधा मर्द ना तो बच्चे को गर्भ में रखता है, ना ही दूध पिलाता है, वो शारीरिक रूप से भी औरत की अपेक्षा अधिक मज़बूत होता है, तो यदि वो बाहर के काम या नौकरी करे और औरत घर पर रहकर परिवार के स्वास्थ्य और बच्चों की देखभाल करे तो यहाँ किसी गुलामी या ज़ुल्म की बात कहाँ से आ जाएगी. यह तो पति-पत्नी के बीच आपसी समझौता है, जिसका पालन करके दोनों पारिवारिक सुख का अनुभव करते हुई सुखी जीवन व्यतीत कर सकते हैं."

‘‘पर सुधीर, यहाँ सब नौकरीपेशा माँ-पिता के बच्चे ‘बेबी केयर सेंटर’ में पल रहे है, हम भी सुजान को वहीँ भरती कर देंगे. वो सेंटर मेरी कालेज के दिनों की मित्र तारा व्दिवेदी का है. मैंने पूरी तरह जाँच-पड़ताल कर ली है. सुजान की वो अपने बच्चे जैसी ही देखभाल करेगी.’’

“जब मातृत्व ही मतलब परस्त हो तो पितृत्व कर भी क्या सकता है लेकिन एक दिन तुम ज़रूर पछताओगी”. सुधीर ने उसके जवाब से आहत होकर सुविधा के आगे हथियार डाल दिए थे.

अब तो परिस्थिति ही ऐसी बन गई थी कि सुविधा के पास अपनी हार मानने के अलावा कोई विकल्प नहीं था. उसने सुधीर को अपने आने की सूचना देकर तुरंत इंदौर से मुंबई जाने वाली गाड़ी दूरंतो के तत्काल कोटे में अपना आरक्षण करवाया और मुम्बई पहुँच गई. उस दिन रविवार था तो सुधीर उसे लेने स्टेशन पर आ गया था. सुविधा को गुमसुम और उदास देखकर पूछ लिया -

“क्या बात है सुविधा, कुछ परेशान लग रही हो”? सुजान को अपनी गोद में लेकर प्यार करते हुए सुधीर ने पूछ लिया.

‘‘मैं सचमुच बहुत परेशान हूँ सुधीर, घर चलकर सब बताती हूँ...’’

घर पहुँचकर सुधीर ने फिर वही सवाल किया तो सुविधा की आँखों से आँसू झरने लगे. उसने बुझे-बुझे शब्दों में सारी बातें विस्तार से बताकर कहा -

''सुधीर प्लीज़ अब मुझे और शर्मिंदा मत करना, मैं अपनी गलती स्वीकार करती हूँ, मैं नौकरी से इस्तीफा दे दूँगी...अब हमें इस सिटिंग सेंटर के खिलाफ रिपोर्ट लिखवानी होगी, वहाँ कोई भी बच्चा सुरक्षित नहीं है. तारा ने मेरे साथ विश्वासघात किया है, मैं उसे कभी माफ़ नहीं करूँगी...''

"सुविधा, तुमने शायद कल सुबह और आज शाम का अखबार नहीं पढ़ा होगा, लो पढ़ो, तब तक मैं तुम्हारे लिए चाय बनाता हूँ". कहते हुए सुधीर ने दोनों दिन के अखबार उसके आगे रख दिये और किचन में चला गया.

कल वाले अखबार के मुखपृष्ठ की सुर्ख़ियों पर नज़र पड़ते ही सुविधा के तो जैसे प्राण ही सूख गए, एक सदमे से अभी उभरी भी नहीं थी कि फिर यह झटका...

वो पथराई आँखों से समाचार पढ़ने लगी. लिखा था -

"तारा देवी बेबी सिटिंग सेंटर" की मालकिन तारा देवी के दो वर्षीय पुत्र की देर रात को संदिग्ध परिस्थितियों में मृत्यु...बच्चे को कल रात "गहन चिकित्सा कक्ष" में भर्ती किया गया था. बच्चे का शव पोस्ट मार्टम के लिए भेज दिया गया है"

सुविधा ने काँपते हाथों से दूसरा अखबार खोला और पढ़ा तो उसकी जैसे साँसें ही थम गईं. लिखा था -

शिशु की पोस्ट मार्टम रिपोर्ट में उसके रक्त में नशे की दवा पाई गई. तारादेवी का बयान नहीं लिया जा सका. वे बेटे की दर्दनाक मृत्यु का सदमा बर्दाश्त न कर सकने के कारण अपना मानसिक संतुलन खो बैठी हैं. सिटिंग सेंटर पर ताला लगा हुआ देखकर पुलिस ने आसपास के लोगों से जानकारी लेकर तारादेवी की पार्टनर 'अल्पना रावत' से उसके घर पर संपर्क किया.

पूछताछ में उसने दुखी मन से बताया -

"परसों दोपहर लगभग एक बजे तारा उसे अपना बच्चा यह कहकर सौंप गई थी कि उसे एक ज़रूरी मीटिंग में जाना है, वहाँ दो तीन घंटे लग सकते हैं, तब तक शिशु को बहलाते रहना है, सुलाना नहीं है. सेंटर के बाक़ी बच्चों को नियमानुसार इस समय सुला दिया जाता है, पर तारा अपने बच्चे को उनके जागने पर ही सुलाती है ताकि वो अपने बच्चे के साथ समय बिता सके. उनके जाते ही मेरे घर से अचानक फोन आ गया कि मेरी सासू माँ पैर फिसलने से अचानक गिर गई हैं, पैर में मोच आ जाने के कारण उन्हें ससुर जी को अस्पताल लेकर जाना पड़ेगा, अतः बच्चे को सँभालने के लिए शीघ्र घर आ जाओ. मेरी यहाँ भी जवाबदारी थी अतः मैंने अपने बच्चे को यहीं लेकर आना उचित समझा. उस समय सेंटर में काम करने वाली लड़कियाँ भी भोजन

के लिए घर जा चुकी थीं और वहाँ केवल ऊपर के काम सँभालने वाली महिला विमला बाई ही थी, अतः एक घंटे में वापस आने और तब तक शिशु को न सुलाने की हिदायत देकर मैंने बच्चा उसे सौंप दिया. घर से वापस आई तो देखा, बच्चा गहरी नींद सो चुका था. मैंने घबराकर कठोरता से विमला बाई से निर्देश का पालन न करने का कारण पूछा तो उसने बताया- क्या करती बीबीजी, बच्चा आपके जाने के बाद एकदम रोने लगा और उसे चुप न होते देखकर मुझे याद आया कि तारा बीबीजी बच्चों को शहद चटाकर सुलाती हैं तो मैंने भी उसे शहद चटाकर सुला दिया. फिर जब शिशु सभी बच्चों के जागने के बाद भी नहीं जागा और उसे जगाने की मेरी सारी कोशिश व्यर्थ गई तो तारा को फोन पर सूचित कर दिया. तारा तुरंत मीटिंग छोड़कर आ गई और सेंटर के डॉक्टर को बुला लाई. डॉक्टर ने शिशु की हालत गंभीर बताकर तुरंत अस्पताल ले जाने को कहा. इसके बाद जो हुआ आप जानते ही हैं". कहते हुए अल्पना अपने गीले नेत्र पोंछने लगी.

उसके बाद पुलिस ने विमला बाई से संपर्क करके उसका बयान लिया तो उसने भी वही सारी बातें दोहराईं. पुलिस दोनों को लेकर सेंटर पहुँची और अल्पना से सेंटर का ताला खुलवाकर वो शहद की शीशी ज़ब्त करके जाँच के लिए भेज दी.

जाँच की रिपोर्ट से स्पष्ट हो गया कि शहद में नशे की दवा मिली हुई है. शायद अधिक मात्रा में देने से ही शिशु की जान चली गई. इसके बाद सेंटर को सील कर

दिया गया है और पुलिस को तारादेवी के सामान्य स्थिति में आने का इंतजार है, ताकि उसका बयान लिया जा सके".

सुविधा ने साँस रोककर यह दिल दहला देने वाला समाचार पढ़ा और खोई नज़रों से शून्य में ताकने लगी. सुधीर चाय ले आया था और उसे तसल्ली देकर पीने के लिए कहा |

''यह तो गज़ब हो गया सुधीर, बच्चे का क्या दोष था जो उसके साथ ऐसा हुआ...''

"यह तारा को उसके किये की सजा मिली है सुविधा, यह बच्चा किसी का भी हो सकता था, हमारा भी...हाँ शिशु की दर्दनाक मौत का मुझे गहरा अफ़सोस है...''

आसमान से टूटकर गिरते विलुप्त होते सितारों को देखकर इंसान का मन चाहे द्रवित न भी होता हो, लेकिन इंसानों की गोद में उनकी नादानियों की वजह से इस तरह दम तोड़ते सितारों के हश्र पर आसमान भी रोता होगा...

अगर फिर भी इस तरह की दुर्घटनाओं से सबक लेकर कामकाजी महिलाओं में जागरूकता नहीं आई तो इस देश के सितारे इसी तरह टूटते, बिखरते और दम तोड़ते रहेंगे.

ooo ooo ooo ooo

लकीर

सुनो माँ...! मुझे जल्दी से उन सब नामों की सूची दे दो जिनको निमंत्रण-पत्र भेजने हैं। स्वाति ने माँ को आवाज़ लगाते हुए कहा। रसोई में व्यस्त सुनयना ने जल्दी से हाथ धोए और अलमारी से सूची वाली कॉपी निकालकर बेटी को दे दी।

स्वाति अपने छोटे भाई की शादी में शामिल होने के लिए १५ दिन पहले ही मायके आ गई है ताकि शादी की तैयारियों में माँ का हाथ बँटा सके। रिश्तेदारों को तो माँ ने काफी पहले ही अपने जेठ को मनुहार करके कार्ड भिजवा दिये थे, केवल स्थानीय मित्र व परिचित रह गए थे जिन्हें कार्ड भेजने थे। स्वाति ने पहले चिन्हित नामों को पढ़ना शुरू किया कि कहीं गलती से कोई रिश्तेदार छूट न गया हो। आखिर पिता की अचानक मृत्यु के बाद माँ नितांत अकेली हो गई थी। चूँकि पिताजी एक बैंक में सरकारी नौकर थे, तो उनके स्थान पर उसके भाई सुभाष को नौकरी मिल गई थी, अतः घर में आर्थिक परेशानी बिलकुल नहीं थी और अब तो सुभाष की शादी हो जाने से घर में रौनक हो जाएगी साथ ही माँ को भी आराम मिल जाएगा। सोचते हुए स्वाति सारे नाम ध्यान से देखती जा रही थी। अचानक उसे कुछ याद आया तो माँ से पूछ बैठी-

“माँ, सूची में हमारे खानदान के कुलगुरु का तो नाम ही नहीं है, क्या उन्हें निमंत्रण पत्र नहीं भेजा गया?”

‘‘नहीं, मैंने इसकी आवश्यकता नहीं समझी..’’

‘‘पर क्यों माँ! हमारे खानदान में तो यह पुरानी परंपरा है, किसी भी शादी में सबसे पहले उनको निमंत्रण जाता है और चाचाजी लोगों के तो सभी बच्चों की शादी में वे आते रहे हैं फिर आप...? मेरी शादी के समय तो अलग बात थी, पिताजी को गुजरे तीन महीने ही हुए थे लेकिन इस बार तो उनको बुलाना चाहिए था न! चाचाजी लोग क्या सोचेंगे?”

‘‘वे चाहे जो सोचें बेटी, वैसे अलग होने के बाद हम लोग किसी के निजी कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते।‘’

“लेकिन माँ, कुलगुरु को न बुलाने का क्या कारण है”?

‘‘बेटी, यह बहुत लंबी कहानी है कभी फुर्सत में सुनाऊँगी। अभी बहुत से काम बाकी हैं।‘’

स्वाति ने माँ के गले में बहन डालकर मनुहार करते हुए कहा -

“काम की चिंता क्यों करती हो माँ, मैं हूँ न”!

बेटी की ज़िद के आगे हार मानते हुए सुनयना ने अपनी यादों की गठरी की गाँठ खोल ही दी। खुली हवा पाकर उसमें तह करके रखे हुए उसके जीवन के पुराने पृष्ठ सहसा फड़फड़ाने लगे और उन्हें समेटते हुए उसने क्रमशः बंधन मुक्त करना शुरू किया -

"बेटी, कहानी तब की है जब तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ था। मैं शादी करके सपनों के हिंडोले पर सवार होकर नई-नई ससुराल आई थी। सास-ससुर, दो जेठ, उनके दो-दो बच्चे, हम दोनों, एक देवर और एक छोटी ननद, कुल मिलाकर १२ सदस्यों का साझा परिवार था। रेडीमेड वस्त्रों की एक अच्छी दुकान थी। दोनों बड़े भाई पढ़ाई में रुचि न होने से ११ वीं के बाद अपने पिता के साथ दुकान का कार्य सँभालने लगे, लेकिन तुम्हारे पिताजी की रुचि पढ़ने में थी और पढ़ाई में तेज़ भी थे तो उन्होने पढ़ाई नहीं छोड़ी। ग्रेजुएशन के बाद उनकी शहर के एक बैंक में नौकरी भी लग गई। कुछ समय बाद ससुर जी का दुकान पर जाना कम होता गया और सारा काम दोनों भाइयों ने सँभाल लिया। लगभग एक साल बाद ही देवर की शादी का कार्यक्रम तय हो गया। इस अवसर पर खानदान की परंपरा के अनुसार सबसे पहले घर का कोई सदस्य उपहार लेकर कुलगुरु को उनके शहर जाकर मनुहार के साथ विवाह में एक सप्ताह पहले आने की मनुहार करके निमंत्रण-पत्र देकर आता है। बड़े भाइयों को दुकानदारी से फुर्सत न होने से कहीं भी आने-जाने के कार्य तुम्हारे पिता ही करते थे, इस बार भी वे ही कुलगुरु को निमंत्रण पत्र दे आए। वे उनकी विव्दता का गुणगान करते नहीं अघाते थे। मैंने अपने विवाह के समय उनको देखा ज़रूर था लेकिन उनसे परिचित नहीं थी,

और विवाह बाद वे शीघ्र ही चले गए थे तो मेरा ध्यान भी इतने मेहमानों में नहीं गया था। अब मैं फिर से उन्हें देखने को उत्सुक हो उठी थी।

विवाह-कार्यक्रम में उनके आगमन के दो दिन पहले से ही घर में उत्साह की लहर दौड़ गई थी सबके चेहरे खिले-खिले थे और उनके स्वागत की तैयारियों में दोनों बड़ी बहुओं के साथ मैं भी लगी हुई थी। आखिर नियत समय पर गुरुदेव अपने ताम-झाम के साथ आ पहुँचे। मैं उनके व्यक्तिव से प्रभावित हुए बिना न रह सकी। सबके साथ मैंने भी प्रणाम करके आशीर्वाद लिया। उनके आने से घर का नक्शा ही बदल गया। चूँकि दोनों बड़े भाई दुकानदारी में तथा पत्नियाँ बच्चों में व्यस्त थे, तो उनकी सेवा की ज़िम्मेदारी हम दोनों पति-पत्नी को सौंप दी गई। ऊपर की मंज़िल में सभी भाइयों के कमरे एक कतार में थे और अंत में एक बड़ा सा हालनुमा कमरा मेहमानों के लिए था। इसी कमरे में उनके रहने की व्यवस्था की गई। सुबह ५ बजे ही उनकी दिनचर्या शुरू होने के साथ ही हम दोनों को उनकी सेवा में हाजिर होना पड़ता था। खानपान से लेकर उनकी हर छोटी-बड़ी सुविधा का पूरा ध्यान रखा जाता। तुम्हारे पिता मुझे उनकी सेवा की हिदायत देकर १० बजे अपने दफ्तर चले जाते। उनके आने तक गुरुदेव के चाय-नाश्ते, भोजन पानी और आराम का पूरा ध्यान रखना मेरे जिम्मे था। पहले दिन ही भोजन के बाद देर रात तक हम पति-पत्नी उनके हाथ पाँव दबाते रहे। जबकि पति का आगे रहकर किसी पर-पुरुष के पाँव दबवाना मुझे सर्वथा अनुचित और अंध-श्रध्दा के अलावा कुछ नहीं लगता था लेकिन पति के भक्ति-भाव के आगे मुँह खोलना उचित नहीं था, आखिर मैं उन्हें जानती ही कितना थी।

गुरुदेव घर की हर महिला को भक्तिन कहकर संबोधित करते थे। मैं जब भी उनके कमरे में जाती, वे कहते -

“भक्तिन तुममें गुरु के प्रति वो श्रध्दा नहीं है जो तुम्हारे पति में है”।

मैं डर जाती कि कहीं वे मेरी शिकायत पति से न कर दें। वे गुरुदेव की अनदेखी बिलकुल सहन नहीं कर सकते थे, यह उनकी बार बार मुझे दी गई हिदायत से स्पष्ट हो गया था, वे मुझे बहुत प्यार करते थे उनका लेकिन गुस्सा भी बहुत तेज़ था। मैं बहुत सीधी थी, उनकी कोई बात काटने या विरोध करने का साहस मुझे मुझमें बिलकुल नहीं था, वे कहते- गुरु-सेवा सबसे बड़ा पुण्य है। मैं कोई जवाब न देती, केवल सिर झुका देती।

पाँच दिन तक प्रतिदिन शाम को दो घंटे उनके प्रवचन और सत्संग का कार्यक्रम होना था उसके लिए सबसे बड़े हॉल में व्यवस्था की गई थी। इस समय केवल घर और पड़ोस की महिलाएँ ही एकत्र होती थीं, फिर मर्द देर से आकर कुछ समय शामिल होते थे। अधिकतर प्रसंग श्रीराम और श्रीकृष्ण के जीवन पर ही आधारित होते, और हम सब आनंदित होकर सुना करतीं। इस तरह चार दिन व्यतीत हो गए। पाँचवें दिन जब सारे काम निपटाकर उनको दोपहर का भोजन देने गई तो उन्होंने खाना टेबल पर रखवा दिया और कहा -

“भक्तिन, आज हाथ पैर बहुत दर्द कर रहे हैं, अगर थोड़ी देर दबा दो तो कुछ आराम हो जाएगा”।

मैं असमंजस में पड़ गई। पति का साथ मजबूरी में देती थी। वे अपने पास बिठाकर कहते -

“सुनयना, गुरुदेव का एक पैर तुम दबाओ एक मैं दबाता हूँ। गुरु से कैसा संकोच”?

लेकिन उनकी अनुपस्थिति में... मेरी परेशानी शायद वे भाँप गए बोले -

‘‘अगर तुम्हारा मन नहीं है भक्तिन, तो कोई बात नहीं...’’

मैं साफ इंकार नहीं कर सकी और कुर्सी पलंग के पास खींचकर उनका पाँव दबाने लगी। कुछ देर में उन्होंने दूसरा पाँव दबाने के लिए पलंग के ऊपर दूसरी तरफ बैठने का इशारा किया। मैं चुपचाप सिमटकर ऊपर बैठकर दूसरा पाँव दबाने लगी। फिर उन्होंने सिर दबाने के लिए कहा। उनकी आँखें मुँदी हुईं देखकर मैं वहीं सरककर उनका सिर दबाने लगी। सिर दबाते हुए मेरी धड़कनें तेज़ हो गई थीं, मन ही मन प्रार्थना कर रही थी कि शीघ्र मुक्त हो जाऊँ। चूँकि मेरा कमरा सबके अंत में हाल से लगा हुआ होने से किसी के उस तरफ आने की कोई संभावना नहीं थी, तो मेरा डरना भी स्वाभाविक था। जब मैंने कहा- गुरुदेव अब आप भोजन करके आराम कीजिये तो वे

उठकर बैठ गए। बोले अभी मन नहीं है भक्तिन और अपने बैग से एक डिबिया से लौंग-इलायची लेकर अपने मुँह में डाल ली और एक मुझे देते हुए कहा- यह मुँह में डाल लो, गुरु का प्रसाद है। लौंग इलायची मुँह में डालते ही मुझे अचानक घबराहट सी होने लगी और आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा। जैसे ही मैं पलंग से नीचे उतरने लगी तो हाथ पैर लड़खड़ा गए और उन्होंने मुझे खींचकर अपने आलिंगन में ले लिया। उनका यह रूप देखकर तो मेरे होश उड़ गए, अगर चिल्लाती तो न जाने घर वाले और पति क्या सोचते, शुभ कार्य के रंग में भंग पड़ जाता वो अलग, अतः अपनी पूरी ताकत से खुद को छुड़ाकर भागी और अपने कमरे में जाकर फफककर रो पड़ी। गनीमत यह थी कि बाहर निकलते हुए मुझपर किसी की नज़र नहीं पड़ी।

शाम होने पर जब नीचे नहीं गई तो जेठानी बुलाने आ गई कि चलो सत्संग शुरू हो चुका है। मेरे मन में अब गुरुदेव के प्रति वितृष्णा का भाव पैदा हो गया था और सब ढोंग लग रहा था, बोली -

“भाभी मेरी तबीयत ठीक नहीं है, मैं नीचे नहीं आ पाऊँगी”। लेकिन उन्होंने बड़े प्यार से कहा -

-“सुनयना, आज सत्संग का अंतिम दिन है, भजन-कीर्तन देर तक चलेगा। कुछ देर आराम कर लो फिर थोड़ी देर के लिए आ जाना”।

लेकिन अँधेरा घिरने के बावजूद जब मैं नीचे नहीं गई तो एक बार फिर बुलाने आईं और तैयार करवाकर साथ में ले गईं। गुरुदेव मुझे कनखियों से देखते रहे। उनकी नज़रों में पश्चाताप का कोई चिह्न नहीं था, बल्कि ढिठाई से बोले -

''आओ भक्तिन, सत्संग सुनकर तुम्हारा सारा कष्ट दूर हो जाएगा।''

मैंने आग्नेय दृष्टि से उनको देखा और खून का घूँट पीकर चुपचाप एक कोने में बैठ गई।

"भक्तिनों, मैं अब आपको श्रीकृष्ण के जीवनकाल का एक छोटा सा रोचक प्रसंग सुना रहा हूँ। ध्यान से सुनिए"।

कहते हुए गुरुदेव ने मुझे तिरछी नज़र से एक बार देखा और कहना शुरू किया -

"एक बार श्रीकृष्ण ग्रामवासियों के साथ यमुना पार जाना चाहते थे। लेकिन नदी बाढ़ से उफन रही थी और वहाँ कोई नाविक न देखकर उन्होंने ध्यान लगाकर नदी से प्रार्थना की कि हे मैया! अगर मैंने अपने जीवन-काल में एक पत्नी के अलावा किसी स्त्री को छूआ तक न हो तो मुझे इन ग्रामवासियों के साथ उस पार जाने का रास्ता देकर उपकृत करो। उनके वचन सुनकर नदी एकदम सूख गई और रास्ता पाकर सब उस पार पहुँच गए।

तो भक्तिनों, यह बात तो सब जानते हैं कि श्रीकृष्ण ने एकाधिक विवाह किए थे। उनकी ८ पटरानियाँ और १६००० अन्य रानियाँ थीं, लेकिन यमुना मैया ने उन्हें दोषी नहीं ठहराया। इसीलिए तो रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने कहा है-

समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं।

रबि पावक सुरसरि की नाईं॥

अर्थात सूर्य, अग्नि और गंगाजी की भाँति समर्थ को कोई दोष नहीं लगता"

बेटी! यह पौराणिक किस्सा सत्य है या कपोल कल्पना, मैं नहीं जानती, सभी भक्तिनें अंध-श्रध्दा में डूबी हुईं आँखें मूँदे उत्साह पूर्वक प्रसंग सुन रही थीं लेकिन मेरी आँखें खुल चुकी थीं, अपने क्रोध के आवेग को नहीं रोक सकी और उठकर वहाँ से अपने कमरे में चली गई।

रात भर नींद नहीं आई, मन में व्दंव्द चलता रहा कि जो इंसान महाकवियों व्दारा आदिकालीन युगपुरुषों की जीवनी पर रचे गए ग्रन्थों का सार छोड़कर अपना स्वार्थ साधने हेतु असार ग्रहण करके आसुरी आचरण का वरण कर लेते हैं, वे क्या समर्थ कहलाने लायक भी हैं? क्या अनश्वर दैवीय शक्तियों, अग्नि, सूर्य, सरिता यानी जल, जिनके बिना जीवन ही संभव नहीं, से इस नश्वर संसारी पुरुषों की तुलना की जा सकती है? समर्थ तो वही हो सकते हैं न, जो अपने गुणों की सुगंध चतुर्दिश फैलाते रहते हैं और उनको कुपित करने के दोषी भी मानव ही तो हैं, जो कुदरत को छेड़कर

अपनी सामर्थ्य का प्रदर्शन करते हैं। ऐसे असुरों ने सद-ग्रन्थों को भी दूषित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

मैंने इस घटना का जिक्र पति से नहीं किया, न जाने उनकी क्या प्रतिक्रिया होती, आखिर कलियुगीन परिभाषा के अनुसार वे भी तो समर्थ-पुरुष? ही थे न!...वे क्या सारे पुरुष शायद समर्थ हैं, असमर्थ तो मैं थी, एक स्त्री, जिसकी व्यथा सुनने वाला कोई नहीं था। उस रात मुझे ऐसा बुखार चढ़ा कि कई दिन तक बिस्तर पर पड़ी रही। विवाह कार्यक्रम में भी शामिल नहीं हुई। अंदर ही अंदर एक दर्द सालता रहा। लेकिन किससे साझा करती? पति चिंतित थे कि अचानक मुझे क्या हो गया।

आखिर मैंने अपना पूरा दर्द एक डायरी में लिखकर उसे अपनी अलमारी में पुराने कपड़ों के बैग में सबसे नीचे यह सोचकर छिपा दिया कि समय आने पर पति को सौंप दूँगी। लेकिन बेटी, वो समय उनके जीवनकाल में कभी नहीं आया, और वे असमय ही काल के गाल में समा गए। अब तो मैं एक और अपराध-बोध लेकर जीने को विवश थी कि मैं उनको अपने मन की बात नहीं बता सकी।

लेकिन बात यहीं खत्म नहीं हुई। नियति ने मुझे पति की नज़रों में निर्दोष साबित करने की व्यवस्था भी कर दी थी। उनके जाने के बाद जब मैंने उनके सारे कपड़े गरीबों में बाँटने के लिए एकत्र किए तो वो पुराने कपड़ों का बैग भी खोला और एक बार फिर मेरे हाथ में वही डायरी थी। उदास मन से खोलकर पढ़ने लगी तो सबसे

नीचे अंत में कुछ शब्द अलग लिखे हुए थे जो मेरे न होकर निश्चित ही तुम्हारे पिता के थे। नीचे तिथि भी कुछ ही महीने पहले की डाली हुई थी, लिखा था -

"सुनयना, तुमने कैसे इतना दर्द अपने सीने में समेटकर इतने साल निकाल लिए। तुम अपने दुख का साझीदार मुझे क्यों नहीं बना सकी, जबकि तुम्हारा अपराधी तो मैं था। यह तो इत्तफाक से तुम्हारी अनुपस्थिति में काम वाला लड़का पुराने कपड़े लेने आया जिसे शायद तुमने बुलाया था। मैंने सोचा मैं ही उसे कपड़े दे देता हूँ और यह बैग टटोलने पर डायरी मेरे हाथ लग गई। फिर मैंने लड़के को दूसरे दिन आने के लिए कहकर डायरी उसी जगह रखकर बैग वापस रख दिया। देखना था कि आखिर तुम कब मुझे इस लायक समझोगी। दुख केवल इस बात का है कि तुम मुझपर विश्वास नहीं कर सकी। खैर... तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं, यह अच्छा हुआ कि तुम उस नरपशु के चंगुल से बच निकली, वरना मैं स्वयं को कभी माफ नहीं कर सकता।

मैंने तय किया है कि आज के बाद हमारे पारिवारिक विवाहोत्सव में कभी कुलगुरु को नहीं बुलाया जाएगा। इस अपंग परंपरा की लकीर पीटते हुए खुद चोट खाते रहने के बजाय मैं इसपर हमेशा के लिए लकीर खींचता हूँ, ताकि ऐसे पाप-प्रसंगों की पुनरावृत्ति कम से कम हमारे खानदान में न हो।

तुम्हारा सुदेश, जिसे तुम अपना नहीं समझ सकी।"

ooo ooo ooo ooo

कसाईखाना

“विशु के बापू, ज़रा सुनना तो.. ” नानकी ने बान की झोल खाती हुई खटिया पर सोए बेटे विशाल को मैली-सी पुरानी चादर उढ़ाते हुए आवाज़ लगाई।

“हाँ कहो क्या बात है?” कोठरी के बाहर ही टाट के परदे की आड़ में नहाते हुए मंगलू ने जवाब दिया।

“आज इन दो बूढ़ी हो चुकी बकरियों और एक बछड़े को कसाईखाने दे आओ...कहाँ सँभालूँ इन सबको, बाड़े में जगह कम पड़ने लगी है, हर साल दो से चार हो जाती हैं। इनका पेट भरने के लिए दुधारुओं का पेट काटूँ या फिर अपना। ना बाबा ना...यह अब नहीं होता, वैसे भी ये तीनों हमारे किसी काम के नहीं। चार बकरियाँ और उनके तीन बच्चे बहुत हैं अब! दिन भर विशु की देखभाल फिर घर के काम के साथ दूध दुहने, घरों में देने से लेकर इन सब जानवरों के सारे काम इतना थका देते हैं कि शरीर का पोर-पोर राहत के लिए गिड़गिड़ाने लगता है।”

माँ की बात सुनते ही नन्हें विशु के कान खड़े हो गए। चादर हटाकर उठ बैठा और माँ से पूछा - “अम्मा, यह कसाईखाना क्या होता है? ” ६ वर्षीय पुत्र की जिज्ञासावश पूछी हुई बात से घबराकर नानकी स्वयं को कोसने लगी कि उसने बेटे की उपस्थिति को

नज़रअंदाज़ क्यों किया? कुछ सँभलकर बोली- “बेटा यह एक बाजार होता है जहाँ बकरियाँ बेचने जाते हैं।”

“लेकिन माँ, बकरियाँ बेचते क्यों हैं? मुझे तो इनके साथ खेलना बहुत अच्छा लगता है”।

“बेटे जब वे हमारे किसी काम की नहीं रहतीं तो बेचना ही पड़ता है। हमारा बाड़ा छोटा है न अधिक हो जाने से उनको परेशानी होती है।”

विशु को पूरी तरह संतुष्टि नहीं हुई फिर भी वह चादर तानकर सोने का उपक्रम करने लगा।

मंगलू नहाकर आ गया था, नानकी से बोला “आज काम पर जाने का समय हो चुका है, कल कुछ जल्दी घर से निकलूँगा तो लेता जाऊँगा”।

नानकी जब से ब्याहकर आई, अपने पति के साथ एक कमरे के कच्चे मकान में, जो कि पति को विरासत में मिला हुआ था, रहती थी। पति का काम शहर की इमारतों की रँगाई-पुताई का था। कुछ समय तक नानकी भी उसी के साथ काम पर जाया करती थी लेकिन गर्भवती होने के बाद उसका काम पर जाना बंद होता गया। घर में रहकर ही अपना समय काटने लगी।

उन दिनों परिवार-नियोजन के लिए प्रचार-अभियान ज़ोरों पर था। गाँव के गरीब-अनपढ़ लोगों को, जो भगवान की देन मानकर एक के बाद एक बच्चों की लाइन कतार लगा देते थे, प्रोत्साहित करने के लिए सरकार ने घोषणा कर रखी थी कि एक या दो बच्चों के बाद नसबंदी करवाने वालों को सरकार की तरफ से सहयोग स्वरूप एक मोटी रकम दी जाएगी। मंगलू ने नसबंदी के बारे में पूरी जानकारी जुटाई और पुरुषों की नसबंदी महिलाओं की अपेक्षा आसान और सुरक्षित जानकर विशु के जन्म के बाद नसबंदी करवा ली।

सरकार से मिले हुए पैसे से पति-पत्नी ने आपसी मशविरा करके अच्छी नस्ल की चार दुधारू बकरियाँ और एक बकरा खरीद लिये। घर के पिछवाड़े काफी ज़मीन खाली थी, वहाँ उन्होंने बकरियों के लिए बाड़ा भी बना लिया। दुधमुँहे बच्चे के साथ काम पर जाना तो मुमकिन नहीं था अतः नानकी घर में ही मेहनत से बकरियों की सेवा करने लगी।

इससे विशु को भी घर का शुध्द दूध मिलने लगा। शेष दूध शहर के धनी घरों में बेचने से आमदनी भी बढ़ने के साथ ही नानकी का समय भी अच्छी तरह कटने लगा। धीरे-धीरे उन्होंने घर को पक्का करवा लिया।

६ वर्ष का होने पर विशु स्कूल जाने लगा वो पढ़ाई में होशियार और मेहनती भी था। हर साल अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होता रहा।समय गुज़रता रहा, युवा होते पुत्र को देखकर

मंगलू खुशी से फूला न समाता। एक दिन उसने उसे दो बूढ़ी बकरियाँ बेचने कसाईखाने भेजा, सोचा कि कुछ काम सीख जाएगा तो उसे भी आराम मिलेगा। विशु ने पहली बार कसाईखाना देखा था। वहाँ का वीभत्स दृश्य और बकरियों की कातर निगाहें देखते ही वो सब समझ गया और उल्टे पाँव लौट पड़ा। कुछ ही दूर जंगल में बकरियों को छोडकर वापस घर आ गया। पिता के पूछने पर उसने सब कुछ बता दिया और साफ कह दिया कि वो ऐसा काम कभी नहीं करेगा, जिसमें बेकार होते ही निरीह पशुओं को मौत के मुँह में धकेल दिया जाए। पढ़ लिखकर इतना कमाएगा कि माँ को भी यह काम नहीं करना पड़ेगा।

हाईस्कूल की परीक्षा में वो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ फलस्वरूप उसे छात्रवृत्ति के साथ उसी शहर के सरकारी कॉलेज में दाखिला मिल गया।

पढ़ाई के साथ ही वो प्रतियोगी परीक्षाएँ भी देता रहा। सफलता लगातार उसके कदम चूमने लगी थी। पढ़ाई पूरी होते ही मुंबई की एक अच्छी कंपनी में उसकी नौकरी भी लग गई और वो माँ-पिता को जल्दी ही साथ ले जाने की बात कहकर मुंबई चला गया। अब तो नानकी-मंगलू के दिन सोने के और रातें चाँदी की होने लगी थीं, बेटे का दूर रहना उन्हें अखरता लेकिन वे मुंबई जाने का सपना पालते हुए दिन बिताने लगे।

चार पाँच साल इसी तरह गुज़र गए। खान-पान और रहन सहन में भी फर्क आ गया। अब वे गरीबी रेखा से ऊपर आ गए थे लेकिन कहते हैं न कि सुख और दुख का

चोली-दामन का साथ होता है... इस परिवार के भी अच्छे दिनों को न जाने किसकी नज़र लग गई कि देखते ही देखते उनकी खुशियों का किला अचानक ढह गया। एक दिन एक ऊँची इमारत की पुताई का कार्य करते हुए मंगलू पैर फिसलने से गिर गया और सिर फट जाने से उसकी वहीं मौत हो गई। नानकी का तो जैसे संसार ही उजड़ गया। सिर पटक-पटक कर खूब रोई लेकिन अब क्या होना था। विशु को पड़ोसियों ने खबर कर दी। वो बदहवास होकर तुरंत छुट्टी लेकर घर आ गया। इमारत के ठेकेदार शोक प्रकट करने के साथ ही एक मोटी रकम का चेक हरजाने के तौर पर विशु को सौंपकर चले गए।

कुछ दिन बाद माँ कुछ सामान्य हुई तो विशाल ने उसे मुंबई चलने को कहा। वो भला अब वहाँ किसके सहारे रहती, बकरियों सहित घर बेचकर वे मुंबई आ गए। यहाँ आकर विशाल ने सारी जमा पूँजी लगाकर एक छोटा सा दो कमरे, बैठक और रसोई वाला फ्लैट खरीद लिया। नानकी इस नई दुनिया में मन लगाने का प्रयास करने लगी लेकिन विशाल के ऑफिस चले जाने के बाद अकेलापन उसे बेहद डरावना लगता। समय काटने के लिए घर के सारे काम वो स्वयं करती फिर भी दिन पहाड़ जैसे लगते। अब उसने विशाल से शादी कर लेने की बात की। सुनकर वो मुस्कुरा दिया।

दूसरे ही दिन विशाल अपनी सहकर्मी प्रतिभा को साथ ले आया और माँ से बिना किसी भूमिका के कहा- “माँ हम दोनों एक दूसरे को प्यार करते हैं, मैं और प्रतिभा एक ही ऑफिस में कार्यरत हैं। हमें आपकी सहमति और आशीर्वाद चाहिए”।

प्रतिभा ने झट से झुककर नानकी के पाँव छू लिए। नानकी उसका सौन्दर्य और विनम्र स्वभाव देखकर मुग्ध हो गई। उसके मन की इच्छा इतनी जल्दी पूरी हो जाएगी, यह उसने सोचा भी न था। उसने तुरंत हामी भर दी। प्रतिभा माँ-पिता की इकलौती संतान थी वह अपने माँ-पिता से विशाल को मिलवा चुकी थी। उन्हें भी इस शादी से कोई ऐतराज न था, सो बिना किसी लाग लपेट के उन्होंने अपने परिजनों की उपस्थिति में कोर्ट-मैरिज कर ली।

प्रतिभा का व्यवहार अपनी सास के प्रति अपनत्व और नम्रतापूर्ण था। नानकी भी उसे हाथों पर रखती और नौकरी के अलावा कोई काम नहीं करने देती थी। प्रतिभा ने उसके मना करने के बावजूद ऊपर के कार्यों के लिए एक कामवाली लगा दी, सिर्फ खाना बनाना ही नानकी के जिम्मे था।

सुख के दिन तो पंख लगाकर उड़ते जाते हैं, सो इनका समय भी उड़ते उड़ते कब ५ साल आगे निकल गया, पता ही न चला। अब प्रतिभा की गोद में एक प्यारा सा बेटा आ गया था, जिसका नाम प्रखर रखा गया। डिलीवरी के लिए मिली छुट्टी पूरी होते ही प्रतिभा ने शिशु को नानकी की गोद में डाल दिया। नानकी तो जैसे निहाल हो उठी। उसे मंगलू की बहुत याद आती। सोचती- आज वो होता तो कितना खुश होता! मुन्ने को वो पल भर भी खुद से दूर न करती, रात को भी अपने साथ ही सुलाती।

उड़ते-उड़ते समय १० साल और आगे निकल गया, लेकिन अब नानकी वृध्द और अशक्त हो चली थी, ऊपर से दमे की बीमारी ने उसे कमरे तक सीमित कर दिया था। उसे लगता जैसे समय के पंख भी थक चुके थे, गति मंद होने लगी थी। प्रतिभा प्रखर को अब माँ जी से दूर रखना चाहती थी अतः काफी विचार करके विशाल की सहमति से उसने नौकरी छोड़ दी, उसे घर में बीमार सास की उपस्थिति भी अखरने लगी थी।

एक दिन बातों बातों में उसने विशाल से कहा -

“विशाल, प्रखर अब १० वर्ष का हो चुका है, उसे अब अलग कमरे की आवश्यकता है। माँ जी दमे की परेशानी से दिन रात खाँसती रहती हैं, ऐसे में प्रखर के स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।’’

‘तुम चिंता मत करो प्रतिभा, हम प्रखर को मुंबई के एक बढ़िया हॉस्टल में शिफ्ट कर देंगे और माँ-जी की देखरेख के लिए २४ घंटे एक सेविका को लगा देंगे।‘

“यह तुम क्या कह रहे हो विशाल! प्रखर अभी बहुत छोटा है, मैं उसे खुद से दूर बिलकुल नहीं करूँगी”।

‘ठीक है, हम हॉल में ही प्रखर का बेड और स्टडी टेबल लगा देंगे।’

“लेकिन मेहमान और मित्र वर्ग का क्या होगा? क्या मैं यों ही घुटती रहूँगी”?

‘कुछ समय सब्र करना ही होगा, हमारे पास और कोई रास्ता नहीं है प्रतिभा...’

“है क्यों नहीं विशाल, मैं अब इस बीमार खाने में एक दिन भी नहीं रह सकती। उचित होगा कि हम माँ जी को एक वृध्दाश्रम में भर्ती कर दें”।

सुनते ही विशाल को जैसे करंट का झटका लगा हो, उसकी आँखों से चिंगारियाँ फूटने लगीं। क्षण भर में समय ने उसे उस खाई की तरफ धकेल दिया जिसे पार करके उसने सफलता के शिखर को छुआ था। उसकी आँखों के सामने २० साल पहले का बचपन का नज़ारा कौंध गया। माँ-पिता का उसकी अच्छी शिक्षा और परवरिश के लिए संघर्ष, स्थानाभाव से वृद्ध बकरियों को कसाई खाने भेजना, बकरियों की कातर निगाहें, और कसाईखाने का वीभत्स नज़ारा चलचित्र की भांति जेहन से गुजरने लगा। लेकिन आज माँ!... उसकी रूह काँप उठी, और ज़ोर से चीख पड़ा- “नहीं.....मैं अपनी माँ को कसाईखाने नहीं भेज सकता..... तुम तलाक ले सकती हो...’’

ooo ooo ooo ooo

अनोखा उपहार

“सुनो नीलू डियर, आज शाम को माँ-पिताजी से मिलने चलना है, मैं जल्दी आऊँगा, तुम तैयार रहना...”

कहते हुए आशीष दफ्तर के लिए निकल गया।

पति के जाते ही नीलिमा प्रसन्न-मन घर के काम-काज जल्दी-जल्दी निपटाने लग गई। उसके कालेज की दो दिन छुट्टी थी। सोचा कि वृध्दाश्रम से वापस आते समय मायके भी होती आएगी। मायका है तो इसी शहर में लेकिन ससुर जी की बीमारी के कारण जाने का समय ही नहीं निकाल पाती थी। बड़ी मुश्किल से उनसे छुटकारा मिला है। छोटू के स्कूल से आते ही वो उसे साथ लेकर मायके वालों के लिए उपहार ख़रीदने बाजार चल दी। ठण्ड के दिन थे तो माँ के लिए एक सुन्दर सा शाल ख़रीदा। पति के घर आते ही वे निकल पड़े। चलते चलते उसने मायके होते हुए आने की बात पति के कानों में डाल दी थी तो भोजन भी वहीं होना ही था अतः आराम से घर वापसी होगी।

कार सरपट भागी जा रही थी। चूँकि वृध्दाश्रम शहर के बाहरी हिस्से में था तो वहाँ पहुँचने में एक घंटा लग जाता है। नीलिमा आज बहुत प्रसन्न थी। ठण्ड के दिन, शाम का समय, साथ ही आसमान में बादल और कोहरा वातावरण को खुशनुमा बना रहे थे। रास्ते में हरे भरे उद्यान दिखते तो उसका मन फूलों सा खिल जाता, झील के पुल से

गुज़रते हुए, लहरों को देखकर उसका तन मन भीगने लगता, पहाड़ियों की कतार देखकर तो वो कल्पनाओं में उड़कर वहाँ पहुँच गई और बादलों के साथ उड़ने लगी। उड़ते उड़ते वो १५ दिन पहले के उन पलों में जा पहुँची जब उसकी सहेली सुधा ने उसकी ज़िन्दगी की किताब में खुशियों का अध्याय जोड़ दिया था।

ooo ooo ooo ooo

सुधा और वो एक ही कालेज में व्याख्याता के पद पर थीं। लेकिन उसकी लगातार अनुपस्थिति से वो सोच में पड़ गई थी कि न जाने क्या समस्या है...उसने फोन पर पूछा था तो नीलिमा ने अपने ससुर जी की तबियत खराब होना बताया था पर इतने से सुधा को संतोष नहीं हुआ था और वो उसका हालचाल जानने उसके घर पहुँच गई थी। नीलिमा का बुझा-बुझा चेहरा देखकर वो पूछ बैठी थी -

'क्या बात है नीलू! सदैव मुस्कुराता हुआ यह चाँद सा चेहरा आज इतना मुरझाया सा क्यों है?'

"कुछ विशेष नहीं सुधा, घरेलू समस्याएँ ही जोंक बनी हुई हैं, समझ में नहीं आता इनसे पीछा कैसे छुड़ाया जाए?"

'फिर भी कुछ बताओ तो सही, हो सकता है मैं कुछ सहायता कर सकूँ...'

“वो क्या है न सुधा, सब कुछ अच्छा चल रहा था, मैं केवल नौकरी पर ही ध्यान देती थी। ससुर जी बाहर से सामान, सब्जी, दूध वगैरह लाने का कार्य करते थे और सासुमाँ छोटू को सँभालने और घर की देखरेख के अलावा महरी से घर के सारे काम अपनी देखरेख में करवा लेती थीं। मुझे कोई चिंता ही नहीं रहती थी। लेकिन एक दिन बारिश में बाजार से सौदा लाते समय ससुर जी पैर फिसलने से सड़क पर गिर गए और उन्हें घुटने में गहरी चोट आ गई। उस दिन के बाद लगभग ६ महीने हो गए, पर सारे इलाज होते हुए भी वे ठीक नहीं हो सके, बल्कि उन्हें अर्थाराइटिस ने भी जकड़ लिया है। सासु-माँ पूरा समय उनकी देखरेख में लगी रहती हैं। अब तो वे भी परेशान और थकी-थकी रहने लगी हैं, घर सँभालने में बहुत परेशानी होने लगी है। मेरे सिर पर दोहरी जवाबदारियाँ आ गई हैं। छुट्टियाँ भी आखिर कितनी ली जाएँ...? आशीष से सहयोग के लिए कहती हूँ तो वे नौकरी छोड़ देने की बात करने लगते हैं। लेकिन मुझे यह मंज़ूर नहीं। इसी कारण हमारे बीच भी मनमुटाव बढ़ गया है। तुम्हीं बताओ सुधा, मैंने इतनी पढ़ाई घर बैठने के लिए तो नहीं की न, आखिर मेरे भी कुछ सपने हैं... क्या करूँ कोई रास्ता नहीं सूझ रहा!”

‘हाँ, समस्या तो है लेकिन नौकरी छोड़ने से भी शायद बात नहीं बनेगी, गहराई से विचार करने की आवश्यकता है।‘

इतने में उसे परदे से बाहर सासुमाँ की झलक दिखाई दी थी, शायद वे ससुरजी के किसी काम से उठकर कमरे से बाहर आई हैं...तभी अचानक नीलिमा के मन में एक

विचार कौंधा था और उसी क्षण मात्र में उसके मनोमस्तिष्क पर स्वार्थ ने अपना अधिकार जमा लिया था। वो माँ-पिता से मिले हुए सारे संस्कार, सास-ससुर का सहज अपनापन, स्नेह त्याग, सब ताक पर रखकर कुछ ऊँची आवाज़ में, ताकि सासुजी सुन सकें, बातचीत को आगे बढाते हुए बोली थी -

"वैसे तो सुधा, आजकल नौकरीपेशा दम्पतियों के समयाभाव को देखते हुए वृध्दाश्रमों का विकास तेज़ी से हो रहा है लेकिन लोग संज्ञान में लें तब न... बेटे तो पतली गली से बच निकलते हैं, और लात बहुओं के सीने पर ही पड़ती है। जबकि होना तो यह चाहिए कि अक्षम होने पर बुजुर्ग स्वयं आगे रहकर अपने जैसों के बीच रहने का मार्ग चुनें ताकि बेटे-बहुओं पर अतिरिक्त भार न पड़े। खैर...! तुम परेशान न हो डियर, जो होना है वो होकर रहेगा, मैं चाय बनाती हूँ"।

'रहने दो नीलू, मैं बस तुम्हारा हालचाल जानने ही आई थी, मुझे थोड़ा बाहर का काम है, मैं चलती हूँ, अपना हालचाल बताती रहना...।'

नीलिमा का तीर निशाने पर बैठा था. दूसरे दिन ही आशीष को कमरे में बुलाकर ससुर जी ने कहा था -

“मैं सोचता हूँ बेटे, कि मेरी बीमारी अब आजीवन पीछा नहीं छोड़ने वाली। तुम्हारी माँ से भी अब अधिक काम नहीं होता और तुम दोनों की दिनचर्या भी प्रभावित हो रही है तो हमें वृद्धों के सेवाश्रम में रहकर सन्यास आश्रम का पालन करना चाहिए”।

आशीष भी प्रतिदिन की चिकचिक से परेशान हो गया था तो थोड़ी ना-नुकुर के बाद इसके लिए तैयार हो गया था।

आज़ाद होते ही वो इतनी खुश हुई थी जिसकी कोई सीमा नहीं थी, पहली कक्षा में पढ़ने वाले छोटू की देखरेख के लिए आया तो थी ही, अतः अब कोई चिंता नहीं थी। सास-ससुर के सामने कितने लिहाज से रहना पड़ता था, उफ़...! न मन का पहनना ओढ़ना, न कभी ऊँची आवाज़ में म्युज़िक सुनना, जिसका उसे बचपन से शौक था।

अब तो जब भी घर में अकेली होती बेफिक्र होकर गुनगुनाने और ऊँची आवाज़ में म्युज़िक सिस्टम पर अपने मनप्रिय गीत लगाकर झूमने और गाने लगती थी।

तंद्रा टूटते ही उसने एक नज़र छोटू पर डाली, उसे नींद आ गई थी...फिर मोबाईल पर अपना मनप्रिय गीत लगाया और झूमने लगी।

पंछी बनूँ, उड़ती फिरूँ मस्त गगन में...

आज मैं आज़ाद हूँ दुनिया के चमन में...

अँधेरा घिरने लगा था, वृध्दाश्रम पहुँचे तो पता चला सास-ससुर कॉमन हाल में शाम का कीर्तन सुनने गए हैं। वे उनके कमरे के बाहर ही रखी हुई बेंच पर बैठकर इंतजार करने लगे। इतने में नीलिमा को बाहरी गेट पर एक कार रुकती हुई दिखी लेकिन जब उसने भाई को उतरकर कार से माँ को सहारा देकर उतारते देखा तो आश्चर्य चकित रह गई पर अगले ही पल उसका मन खुशी से भर गया।

सोचा - शायद आशीष ने ही उन्हें बुलाया होगा और वे भी उसके सास-ससुर से मिलने आए होंगे। एक सप्ताह ही तो उनको यहाँ आए हुआ है और वे भी पहली बार ही उनसे मिलने आए हैं। नीलिमा लगभग दौड़कर माँ के गले लग गई और सहारा देकर बेंच तक लाकर बिठा दिया। छोटू भी नानी से चिपककर वहीं बैठ गया और उधर आशीष उसके भाई के साथ बातचीत में व्यस्त हो गया।

“अरे माँ! कैसी हैं आप? बहुत दिन हुए हमें मिले न...हम स्वयं यहाँ से वापसी में आप सबसे मिलने आ रहे थे, अब आप आई हैं तो हम आपके साथ ही चले चलेंगे, सबसे मिलना हो जाएगा। वैसे तो घर से निकलना ही नहीं हो पाता था, जॉब के साथ ही घर, बच्चे और सास-ससुर की देखरेख ने मेरी कमर ही तोड़ दी थी, अब जाकर कुछ राहत मिली है। देखो न मैंने सबके लिए उपहार भी ख़रीदे हैं।”

कहते हुए नीलिमा ने बैग खोला और माँ के लिए ख़रीदा हुआ शाल निकालकर उनके कंधे पर डालकर बोली -

“यह आपके लिए ही लिया है माँ, कितनी सुन्दर लग रही हो माँ इस शाल में...!”

लेकिन माँ का कोई उत्तर न पाकर उसने गौर से उनकी ओर देखा तो वे कुछ गंभीर सी दिखीं।

“आप कुछ परेशान दिख रही हैं माँ! क्या बात है?”

‘तुम्हारे भाई अब बंटवारा करके अलग हो चुके हैं नीलू... वो...’

“अरे! यह कब हुआ माँ? मुझे तो मालूम ही नहीं...अब आप किसके साथ रहेंगी? हाँ...बड़े के साथ ही रहेंगी न! वही तो आपका सबसे अधिक ध्यान रखता है। कभी किसी चीज़ की कमी नहीं होने देता...फिर आप इतनी परेशान क्यों हैं? अब तो आप जब मन चाहे मेरे पास भी आकर रह सकती हैं।”

माँ की बात बीच में ही काटकर नीलिमा अपनी ही धुन में बोलती चली जा रही थी, फिर अचानक एक नज़र माँ की तरफ गौर से देखा तो कुछ पूछने से पहले ही उनकी आँखों की कोरें भरी हुईं देखकर हैरान रह गई।

‘वो बात नहीं है बेटी, बात यह है कि जिस दिन तुम्हारे सास-ससुर के वृध्दाश्रम जाने की बात बेटे-बहुओं को पता चली, उसी दिन से उस घर से मेरी विदाई की कवायद

शुरू हो गई। तुम नहीं जानतीं, बहुओं में आए दिन खींचातानी और चखचख तो चलती ही रहती थी, पर अलग होने पर मुझे कौन रखेगा इसी बात पर आकर बात टल जाती थी। वृद्धाश्रम के लिए पहले तो मेरे बचाव में अकेलापन बहुत बड़ा हथियार था, लेकिन तुमने उनकी मुश्किल आसान कर दी। अब मुझे अपने समधियों के साथ यहीं रहना होगा।'

कहते हुए माँ ने कार से उसका सामान उतरवाकर आते हुए बेटे और दामाद की तरफ इशारा कर दिया।

नीलिमा के तो जैसे होश ही उड़ गए। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। पासा पलट चुका था, उसका अंतर्मन जीत का जश्न भूलकर इस अप्रत्याशित हार पर हाहकार कर उठा। अपने ही बुने जाल में वो स्वयं फँस गई थी...मगर जली हुई रस्सी में ऐंठन अभी बाकी थी। गुस्से से आग-बबूला होकर चीखते हुए बोली -

"ऐसा कैसे हो सकता है माँ? दो बेटे, दो बहुएँ, उनके दो-दो बच्चे...इतना बड़ा भरा पूरा परिवार...सब तो मेरी इकलौती प्यारी माँ को सर आँखों पर रखते थे और बहुएँ तो जॉब भी नहीं करतीं न...!"

'कल तक ऐसा ही था नीलू, मगर खरबूजे को देखकर ही खरबूजा रंग बदलता है न...'

“पर मेरी सहमति के बिना उन सबकी यह हिम्मत कैसे हुई? आखिर मैं सबसे बड़ी हूँ...तय तो यही था न कि आपके होते हुए कभी घर का बँटवारा नहीं होगा...और शादी से पहले भाभियों के लिए भी मैंने यही शर्त रखी थी, फिर माँ, आपने भी कोई विरोध क्यों नहीं किया? मैं अभी बड़े से इसका उत्तर माँगूंगी...”

‘कैसा विरोध, और किस बात का उत्तर चाहिए तुम्हें बेटी? जबकि तुमने...हाँ नीलू! तुमने खुद ही मुझे यह उपहार सौंपा है।’

कहते हुए माँ ने कंधे पर डली हुई शाल के छोर से आँखों की गीली कोरें पोंछ लीं।

ooo ooo ooo ooo

जिसकी जूती उसी का सिर

नए साल की छूट है

मची माल में लूट है

एक खरीदो एक फ्री

थैले भर ले जाओ जी...

जब शहरों के बाज़ार, माल दुकान आदि बिक्री केन्द्रों पर छूट का हल्ला मचा हुआ हो, मनभावन, लोकलुभावन सामग्री से समाचार पत्र अटे हुए हों, टीवी चेनल नारे लगा रहे हों तो फिर महिलाओं में खरीदी की होड़ में दौड़ शुरू होना स्वाभाविक ही है।

लीना और मीना शहर की एक मध्यमवर्गीय सोसाइटी के सिंगल बेडरूम-हाल के छोटे से फ्लैट में रहती हैं। दोनों पक्की सहेलियाँ हैं। घर के कार्यों से फुर्सत पाकर घंटों मोबाइल पर लगी रहती हैं। उनकी आपस में इतनी इस कारण भी पटती है कि जहाँ सोसायटी की अधिकतर शादीशुदा युवतियाँ कोई प्राइवेट कंपनी में तो कोई सरकारी नौकरी करती हैं, लीना और मीना का, सीमित आमदनी में गुजारा करते हुए घर के कार्यों में अपना समय खपाने के बाद कुछ समय किताबें तथा रुचिकर साहित्य पढ़ने में तथा कुछ पड़ोस मोहल्ले की खोज खबर साझा करने के साथ बतरस का आनंद लेने में गुज़र जाता है।

समाचार पत्र, पत्रिकाओं के विज्ञापनों पर चर्चा तो चलती ही रहती है। क्या मज़ाल कि कपड़े, गहने, चूड़ी, चप्पल से लेकर रूमाल बिंदी तक का कोई विज्ञापन इनकी नज़रों से चूक जाए।

बनाव-शृंगार और नए कपड़ों का शौक तो हर महिला को होता है और यह स्वाभाविक भी है सो आज की चर्चा इसी विषय पर ही थी। महिलाओं को जेब खर्च चाहे कितना भी कम मिलता हो लेकिन 'बूँद-बूँद से घट भरे' वाली कहावत को वे भली भाँति चरितार्थ करने में लगी रहती हैं फिर ऐसे मौके बार-बार नहीं आते, उनको इस बात से कोई मतलब नहीं होता कि जो कहा जा रहा है उसमें कितनी सच्चाई है। बात की तह तक जाने की फुर्सत ही किसको है और हो भी तो इस मामले में जानकर अंजान बनने में जो सुख है, वो केवल महिलाएँ ही जानती हैं। वैसे तो वे साल भर के हर त्यौहार पर छूट का लाभ उठाती ही हैं, लेकिन जो आनंद पतियों से छिपकर खरीदने में मिलता है वो साथ में नहीं, क्योंकि साथ रहने से लगाम पतियों के हाथ में होती है। पतियों के साथ खरीदा हुआ माल एक नंबर में और अलग से खरीदा हुआ भुगत रहता है। यह विशेषता लगभग हर महिला में होती है। फिर भला लीना या मीना का क्या दोष?

आज ३० दिसंबर है और शहर के प्रसिध्द माल में वस्त्रों पर छूट का अंतिम दिन, सो आज की बातचीत में दोनों ने तय किया कि पतियों के दफ्तर जाने के बाद माल जाकर कुछ माल समेटा जाए, इस शुभ अवसर पर यह शुभकर्म न किया तो पूरा साल

ही व्यर्थ जाएगा। घर के काम जल्दी-जल्दी समेटकर दोनों अपने अरमान पूरे करने चल पड़ीं।

माल उनका चिर परिचित था। वैसे तो शहर में अनेक माल कुकुरमुत्ते जैसे यहाँ-वहाँ उग आए थे लेकिन उनको एकमात्र इसी माल से ख़रीदारी करना पसंद है क्योंकि यहाँ उनको अपने गाँव जैसा सुकून मिलता है। यहाँ सारी सूचनाएँ अंग्रेज़ी के साथ ही हिन्दी में भी टंकित होती हैं और विदेशी परिधानों के साथ ही पारंपरिक भारतीय परिधान-सलवार-सूट, लहँगा-चोली, साड़ी आदि के स्टॉल पर उसी वेषभूषा में युवतियाँ तैनात रहती हैं। माल पहुँचकर वे हर स्टाल पर देखती हुई घूमती रहीं। कपड़ों की वैरायटियाँ इतनी कि सोच सोच कर उनका दिमाग ही सुन्न होने लगा। गरम कपड़ों पर भी विभिन्न ब्राण्डों की बहार थी। आखिर नया साल आता भी तो घोर सर्द मौसम में है न! विक्रेताओं की चाँदी ही चाँदी और खरीदार भी सस्ते? कपड़े खरीदकर निहाल!

मीना और लीना तय ही नहीं कर पा रही थीं कि क्या खरीदें और क्या छोड़ें। दोनों पर ऐसा जुनून सवार हो गया कि वे तब तक कपड़े खरीदती रहीं जब तक पर्स ने और रकम देने से इंकार न कर दिया।

खरीदी से संतुष्ट होकर जैसे ही बिल चुकाने के लिए काउंटर की ओर मुड़ीं कि अचानक उन्होने लता को उस तरफ आते हुए देखा।

लता उनकी ही सोसायटी की नौकरी पेशा युवती थी। एक ही सोसायटी के रहवासी कॉमन स्थल पर, जहाँ भ्रमण-पथ, उद्यान, लॉन, तरणताल और बच्चों के झूले आदि हैं वहाँ तो मिलते ही हैं, क्लब हाउस में भी त्यौहारों पर मुलाक़ात होती रहती है। इस तरह सभी रहवासी एक दूसरे से परिचित तो हो ही जाते हैं और एक दूसरे को अनेक मौकों पर घर भी बुलाया जाता है। एक साथ खानपान और उपहारों का लेन-देन भी चलता ही रहता है।

हमारे देश में कोई कहीं भी रहे लेकिन परम्पराओं से परे कोई नहीं होता। यही एक भारतीयों की विशेषता है जो लोगों को जोड़े रखती है। आधुनिकता को अपनाना तो सबकी अपनी-अपनी समझ पर होता है। लीना और मीना का ख़रीदारी का काम पूरा हो चुका था और उनको अब शीघ्र घर पहुँचकर रसोई का काम भी पतियों के आने से पहले करना था तो वे अब वहाँ रुकने के मूड में बिलकुल नहीं थीं। लता को देखकर उन्होंने कन्नी काटकर निकल जाने में ही अपनी भलाई समझी। अगर वो इन्हें देख लेगी तो एक घंटा और बर्बाद हो जाएगा क्योंकि लता अकेली ही थी शायद ऑफिस से छूटकर कुछ ख़रीदारी के लिहाज से सीधे यहीं आई होगी।

अतः दोनों उससे बचने की तरकीब सोचने लगीं। इधर उधर देखने पर उन्हें एक रास्ता सूझ ही गया। वे सामने ही दिख रहे बड़े दरवाजे से होकर खुली छत वाले हिस्से में पहुँच गईं जहाँ लोग ख़रीदारी के बाद अपनी अपनी पसंद के व्यंजनों का स्वाद ले रहे थे। इनको भोजन तो घर पहुँचकर पतियों के साथ ही करना था सो चाय का आर्डर

देकर बैठने के लिए ऐसी जगह चुनी जहाँ से लता को ठीक से देखा जा सकता था। लता की नज़र शायद उनपर नहीं पड़ी थी, कुछ ही देर में वो हर जगह नज़र फेरती हुई वहाँ से चली गई। दोनों ने चैन की साँस ली और बिल चुकाने वापस वहीं आ गईं।

दोनों के बैग गले तक भरे हुए थे, अब उन्हें घर में जगह देने की बारी थी। एक बेडरूम के घर की इकलौती अलमारी में भला कितना कुछ समेटा जा सकता है? हालत तो यह थी कि पट खुलते ही कपड़े कदमों में लोटने लगते थे, और अगर कपड़ों को आज ही भूगत न किया तो पतिदेव नाराज़ होने के साथ ही नए साल का उपहार भी हजम कर जाएँगे। वे क्या जानें कि हमने कितनी मेहनत से यह रकम एकत्रित की है। बहुत सोच-विचार के बाद दोनों ने तय किया कि वे अपने बैग बदलकर घर ले जाएँ और पतियों को मित्र का बैग बताकर उत्सव के बाद आराम से घर में व्यवस्थित कर लें। इस तरह पूरी तरह संतुष्ट होकर दोनों अपने-अपने घर लौटीं।

शाम को जब मीना के पति विनय दफ्तर से लौटे तो कोने में बैग देखते ही कहा- “आज तो लगता है तगड़ी ख़रीदारी हुई है, ज़रा मैं भी तो देखूँ ...”

“नहीं जी, मैं इतनी खुशनसीब कहाँ हूँ, यह बैग तो मेरी सहेली लीना का है, वो मुझे मशविरे के लिए साथ ले गई थी, वापसी में उसे एक मित्र के पास जाना था तो बैग मुझे सँभालने को कहा, देखिये न नए साल की छूट में कितने सुंदर सूट खरीदे हैं उसने। मुझे भी इसी तरह का सूट चाहिए। आज छूट का अंतिम दिन है... आपने मुझे

एक ड्रेस दिलाने का वादा किया है, अब तक वो भी पूरा नहीं किया। अगर आज नहीं दिलाया तो फिर उसी कीमत में एक ही सूट खरीदना पड़ेगा। प्लीज़... मेरे पास कोई नया सूट नहीं है..."

"ठीक है डियर, तुम्हें समय पर उपहार मिल जाएगा, ज़रा अदरक वाली चाय तो पिलाओ, ठंड से रूह काँप रही है"

शाम को जैसे-तैसे समय निकालकर विनय ने दफ्तर से लौटते हुए एक ड्रेस पत्नी के लिए खरीदने का मन बनाया और माल पहुँच गया। वहाँ लीना के पति सुशील भी मिल गए। मित्रता इतनी प्रगाढ़ तो नहीं थी फिर भी कभी-कभार पत्नियों की गहरी दोस्ती के कारण एक दूसरे के यहाँ आना-जाना हो ही जाता था। घूम-फिरकर दोनों एक ही स्टाल पर मिल गए, शायद सुशील भी पत्नी के लिए ड्रेस खरीदने के उद्देश्य से आया था। विनय ने पूछ ही तो लिया

"किसके लिए ख़रीदारी की जा रही है सुशील?"

"क्या बताऊँ यार, कल के उत्सव के लिए हमारी श्रीमती जी को मीना भाभी जैसा ही सूट चाहिए, उसी की तलाश में हूँ। बहुत सुंदर ड्रेस खरीदे हैं भाभीजी ने..."

"मीना ने कब खरीदे? मुझे तो पता ही नहीं..."

“अरे! कल ही इसी माल से छूट में...लीना को साथ ले गई थीं, वापसी में उनको मित्र के यहाँ जाना था तो बैग लीना के पास ही रह गया”।

विनय हैरान होकर बोला-

“यही तो मीना ने भी मुझसे कहा...लीना भाभीजी का कपड़ों का बैग मेरे घर पर ही है...”

दोनों को मामला समझने में देर न लगी, पत्नियों की चालाकी भाँपकर उन्हें मात देने की योजना बनाकर दोनों खाली हाथ वापस लौट गए।

पति को आज भी खाली हाथ आया देख मीना की भौंहें तन गईं-

“हर दिन झाँसा देने में तुम्हें शर्म नहीं आती? अगर मेरे लिए इतना भी खर्च नहीं कर सकते तो मैं भी कल क्लब नहीं जाने वाली...”

“अरे! अभी कल का दिन बाकी है डियर, सचमुच आज बहुत थक गया हूँ, छूट की अवधि कुछ दिन बढ़ गई है, यह देखो...उसने समाचार पत्र आगे कर दिया”।

मीना निरुत्तर होकर चाय बनाने चली गई। सोचा, कल तक और सब्र कर लेगी। सुबह दफ्तर जाते हुए पति को एक बार फिर से याद दिलाया कि उसे ऑफिस से सीधे माल जाकर ड्रेस खरीदनी है। विनय मुस्कुराकर चला गया। शाम को कुछ देर से ही घर लौटा। आते ही बैग मीना के हाथ में देकर जल्दी से तैयार होने को कहा। मीना ने बेसब्री से बैग लपक लिया। खोलकर देखते ही वो आश्चर्य में पड़ गई। यह सूट उसके खरीदे हुए एक सूट जैसा ही था, उसे अच्छी तरह याद था, रंग डिज़ाइन सब, बल्कि साथ में फ्री लिया हुआ सूट भी वैसा ही...सोचने लगी-विनय की पसंद उसकी पसंद से कितनी मिलती है, अब ये अतिरिक्त पीस लीना से ही से अदल-बदल कर लेगी। सोचकर वो खुशी-खुशी तैयार होकर पति के साथ चल पड़ी।

क्लब के मुख्य व्दार पर ही उसे लीना अपने पति के साथ मिल गई। उसे देखकर मीना को आश्चर्य का एक और झटका लगा। उसने भी अपने ही खरीदे हुए कपड़ों जैसा सूट पहन रखा था, “यह कैसे हो सकता है?” सोचती हुई वो लीना की ओर बढ़ी, इधर विनय और सुशील बातें करते हुए आगे निकल गए।

“लीना...यह कैसे हो सकता है कि हम दोनों के ही पति हमारी खरीदी हुई ड्रेस जैसी ही ड्रेस ले आए?”

“हाँ मीना। मुझे भी आश्चर्य हो रहा है, और तो और साथ में फ्री वाली ड्रेस भी वैसी”।

जब दोनों ने घर में हुई बातचीत एक दूसरे को बताई तो उन्हें सब समझ में आ गया कि चोरी पकड़ी गई है, उनकी जूती उन्हीं के सिर पर पड़ चुकी थी।

सामने नज़र पड़ी तो विनय और सुशील उनको ही देखकर मुस्कुरा रहे थे। खिसियानी सी दोनों उस तरफ बढ़ गईं।

ooo ooo ooo ooo